प्रकाशक :

नाथूराम प्रेमी, मेनेजिंग डायरेक्टर,
हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर (प्रा०) लि०,
हीराबाग, बम्बई-४.

पहली बार
दिसम्बर, १९५७

मुद्रक :

रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केलेवाड़ी, गिरगाँव, बम्बई-४.

निवेदन

आजसे तीन वर्ष पूर्व मेरी ऑखे बहुत खराब हो गई। तीन चार महीने तक असह्य पीडा थी और पढ़ना लिखना तो दूर दिनमें ऑख खोलकर ताकना भी मना था। जब पीडाकी मात्रा कुछ कम हुई तो विश्रामके लिए शान्ति-निकेतनके अपने पुराने आवासमे एक महीनेके लिए चला गया। दिनभर ऑख बन्द किये रहता था, और निश्चेष्ट पडा रहता था, पर मनमें लिख पढ़ न सकनेके कारण एक प्रकारका विचित्र उद्वेग बना रहता था। एक दिन मेरे मित्र और अग्रज-समान पूज्य प० निताई विनोद गोस्वामीने कहा कि आप भी बैठे बैठे मेघदूतकी एक व्याख्या क्यों न लिख दे? गोस्वामीजी बहुत ही उच्चकोटिके विद्वान् और सहृदय व्यक्ति हैं। उनके इस इगितने मुझे प्रेरणा दी। मैंने उनसे कहा कि गीता और मेघदूत हमारे देशके दो विचित्र ग्रन्थ हैं। धर्म और अध्यात्मका उपदेश देनेवाला हरएक विद्वान् और आचार्य गीताकी एक व्याख्या अवश्य लिख जाता है, और साहित्य-रसिक कवि और सहृदयजन कोई-न-कोई टीका, व्याख्या, कविता या आलोचना मेघदूतके सम्बन्धमें अवश्य लिख जाते हैं। ये दोनों ग्रन्थ विश्वनाथजीके मन्दिरके घण्टेके समान हैं। हर तीर्थयात्री एक बार इनको अवश्य बजा जाता है। गोस्वामीजीका सुझाव बिलकुल ठीक था। मुझे मेघदूतपर कुछ लिखना चाहिए। पॉचों सवारोंमें नाम लिखानेका इससे सुगम साधन और कोई नहीं है।

इस प्रकार मेघदूतकी व्याख्या लिखनेकी प्रेरणा मिली। एक बुरी आदत यह पड़ गई है कि जब लिखने बैठता हूँ तो दो-चार पुस्तके अवश्य खोल लेता हूँ। कुछ उद्धरण देनेके लिए और कुछ अपनी बातकी पुष्टिके लिए प्रमाण सग्रह करनेके लिए; परन्तु जब ऑखे खराब हों, लिखने पढने पर सख्त पाबन्दी हो, और पुस्तक मॉगने पर मित्रोंकी ओरसे भी डॉट पडनेकी ही आशंका हो तब उपाय ही क्या है? इसीलिए कोई टीका या व्याख्या लिखना तो सम्भव नहीं था, जो कुछ लिखा या लिखाया गया वह 'गप्प' से अधिककी मर्यादा नहीं रखता। इसीलिए मैंने इसका नाम भी दिया--'मेघदूत—एक पुरानी कहानी'। जो कुछ लिखा गया वह निस्सन्देह मूल श्लोकोंके आधार पर ही लिखा गया, परन्तु ऐसी बातें भी उसमें आ गई हैं, जो लिखे गए अर्थोंकी पुष्टिके लिए जोड दी गई थीं। बादमे

पाद-टिप्पणीमें वे मूल श्लोक भी लिख लिए गए जिनके आधार पर व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। ये अंश कलकत्तेके 'नया समाज' मे कुछ दिनों तक प्रकाशित होते रहे। शान्ति-निकेतनमे पूर्वमेघका अधिकाश लिख लिया गया था परन्तु ग्रन्थ पूरा नहीं हुआ। मुझे फिर कर्मस्थानपर लौट आना पडा और अनेक कामोंमे उलझ जाना पडा। पुस्तक अधूरी ही पडी रह गई। लेकिन इस बीच कई सहृदय विद्वानोंने उसे पूरा कर देनेका आग्रह किया। मेरे दो प्रिय छात्र—श्री मदनमोहन पाण्डेय और श्री विश्वनाथप्रसादजीने बार बार आग्रह और तगादा करके और किसी भी समय लिखनेको तैयार होकर बाकी अश भी पूरा करा लिया और इस प्रकार यह कहानी किसी तरह किनारे लगी।

मेघदूत अद्भुत काव्य है। अबतक इसपर सैकडों व्याख्याएँ लिखी जा चुकी हैं। आधुनिक युगमे यह और भी लोकप्रिय हुआ। भारतीय भाषाओंमे इसके कई समश्लोकी और पद्यात्मक अनुवाद हुए हैं। आधुनिक हिन्दीके अन्यतम प्रवर्तक राजा लक्ष्मणसिहसे लेकर इस युगके नवीन विचारवाले युवक कवियों तकने इसे अपने ढंगसे कहनेका प्रयत्न किया है। जो भी इसे पढ़ता है उसे अपने ढंगसे इसमे ताजगी दिखाई पडती है। क्या कारण है? सम्भवत मेघदूत मनुष्यकी चिरनवीन विरह-वेदना और मिलनाकाक्षाका सर्वोत्तम काव्य है। शायद ही कोई काव्य हो जो मनुष्यको इतनी गहराईमें आन्दोलित और प्रभावित कर सका हो। ऐसे अद्भुत काव्यका इतना लोकप्रिय होना आश्चर्यकी बात नहीं है।

मेरी यह व्याख्या कैसी हुई है, इसपर विचार करना मेरा काम नहीं है। 'स्वान्तः सुखाय' बहुत बडा शब्द है। परन्तु मैंने जिन दो चार निबन्धों और पुस्तकोंकी रचना सचमुच स्वान्तः सुखाय की है, उनमें यह भी एक है। यह जैसी भी है, सहृदयोंके कर-कमलोंमें समर्पित है। उन्हीका स्नेह पाकर यह धन्य हो सकती है।

प्रेमीजीने अपनी स्वाभाविक उदारता और तत्परताके साथ इस पुस्तकको प्रकाशमें लानेका यत्न किया है। उनके प्रति आभार प्रकट करना भी ढिठाई है। प्रेमीजीके यहाँसे प्रकाशित मेरी अन्य पुस्तकोंकी भाँति इसमें भी उनके द्वारा स्वीकृत लेखन-विधिका ही व्यवहार हुआ है। मेरा ढंग कुछ और है।

काशी, २०-११-५७ — हजारीप्रसाद द्विवेदी

मेघदूत—
एक पुरानी कहानी

१

कहानी बहुत पुरानी है, किन्तु बार-बार नए सिरेसे कही जाती है। अतः एक बार फिर दुहरानेमे कोई नुकसान नही है।

एक यक्ष था, अलकापुरीका निवासी। इस देश और इस कालके निवासियोंकी दृष्टिसे देखा जाय तो वह निहायत ग़रीब नहीं कहा जा सकता। दूरसे ही उसके विशाल महलका तोरण इन्द्रधनुषके समान झलमलाया करता था। मकानकी सीमामें ही जो मनोहर वापी उसने बनवाई थी, उसकी सीढियाँ मरकत मणिकी शिलाओसे बाँधी गई थी और उसके भीतर वैडूर्य मणिके स्निग्ध—चिकने—नालोपर मनोहर स्वर्ग-कमल खिले रहते थे। इस वापीके निकट ही इन्द्रनील मणियोसे बना हुआ क्रीड़ा-पर्वत था, जिसके चारो ओर कनक-कदलीका बेडा लगा था। एक माधवी-मण्डपका क्रीडानिकुंज था, जिसके

ठीक मध्यमें स्फटिक मणिकी चौकीपर कांचनी वासयष्टि थी, जिसपर उस यक्षका शौकीन पालतू मयूर बैठा करता था—शौकीन इसलिए कि यक्षप्रियाकी चूड़ियोकी झंकारसे ही नाच लेनेमे उसे रस मिलता था। ग़रज कि मकानकी शान देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वह गरीब था। उसके बाहरी द्वारके शाखा-स्तंभोपर पद्म और शख थे, जिसका मतलब कुछ विद्वान् यह बताते है कि शख और पद्म तककी संपत्ति उसके पास थी और कुछ विद्वान् इसे उन दिनोके पैसेवालोकी महत्त्वाकांक्षाका चिह्न-मात्र मानते हैं। जो भी हो, यक्ष बहुत गरीब नही था। कल्पवृक्षके पास रहनेवालोको धनकी क्या कमी हो सकती है भला!

परन्तु निर्धन चाहे न हो, नौकरीपेशा आदमी वह जरूर था। यह तो नही मालूम कि वह क्या काम करता था; मगर मेघदूतके टीकाकारोंने जो अनुमान भिडाए हैं, उनसे यही पता लगता है कि वह कोई बहुत ऊँचे ओहदेका आदमी नहीं था। कुछ लोग बताते हैं कि यक्षपति कुबेरका माली था। प्रियाके प्रेममे वह निरन्तर ऐसा पगा रहता था कि काम-काजपर बिल्कुल ध्यान नही देता था। एक दिन इन्द्रका मतवाला हाथी ऐरावत आकर बगीचा उजाड़ गया और इन हज़रतको पता भी नहीं चला! कुबेर रईस आदमी थे, फ़ूलोंके बडे शौकीन। उन्हें यक्षकी—बेचारेका नाम किसीने नहीं बताया—इस हरकतपर क्रोध आया और उसे साल-भरके लिए देश-निकालेकी सज़ा दे दी। दूसरे लोग कहते है, कुबेरने प्रातःकाल पूजाके लिए ताजे कमलके फूल लानेके कामपर उसे नियुक्त किया था। पर प्रात.काल उठ सकनेमें कठिनाई थी और

यह प्रमादी सेवक बासी फूल दे आया करता था। जो हो, इतना स्पष्ट लगता है कि नौकरी वह मामूली-सी ही करता था। ग़फ़लत कर गया और साल-भरके लिए देश-निकालेका दण्डभागी बना। पहली कहानी कुछ अधिक ठीक जान पड़ती है। ज़रूर ऐरावतने ही इस बेचारेकी दुर्दशा कराई होगी! मेघ-दूतमे ऐसा इशारा भी है।

कुबेर चाहते, तो जुर्माना कर सकते थे। पर वह दण्ड बेकार होता, क्योकि कल्पवृक्षसे वह जो चाहता, वही मॉग लेता और जुर्माना चुका देता। जेलखाने वहॉ शायद थे ही नहीं। उस नगरीमें एकमात्र बन्धन प्रियाका बाहु-पाश था। पर कुबेरने इस दण्डसे कोई विशेष फायदा नहीं देखा। असलमे देश-निकालेसे बढ-कर और कोई दण्ड उस देशमे हो ही नही सकता था। मगर यक्ष कुबेरका चाहे जितना भी अदना नौकर क्यो न हो, था देवयोनिका जीव। निधियॉ उसके अधिकारमे थीं, सिद्धियॉ उसके लिए सब-कुछ करनेको प्रस्तुत थी। इसलिए सिर्फ राजादेशसे यदि दण्ड दिया जाता, तो यक्ष कुछ-न-कुछ ऐसा अवश्य कर लेता, जिससे वह अलकाके बाहर भी आरामसे रह सकता था। हजार हो, देवयोनिमें जन्मा था, सो कुबेरने उसे सजा नहीं दी, शाप दिया। देवता ही देवताको मारना जानता है। लोहा ही लोहेको काट सकता है।

प्रेमजन्य प्रमाद इतिहासमे और भी हुए हैं। यक्षने जो गफ़लत की, वैसी ही और भी कई वार की गई है। कहते हैं, खानखाना अब्दुर्रहीमका एक साधारण भृत्य प्रिया-प्रेममें कर्त्तव्य-बुद्धिसे इतना हीन हो गया कि छह महीने तक काम पर ही न गया। गया तो

डरता हुआ और जीवनकी सबसे कठिन सज़ा सुननेकी आशका लिए हुए। उसकी प्रिया कविता लिख लेती थी। उसने पुरजेपर एक बरवै छन्द लिख दिया था। इसपर कवि रहीमने भृत्यका अपराध क्षमा कर दिया था और पुरस्कार भी दिया था। वे मनुष्य थे, पर कुबेर तो देवता थे। मनुष्य क्षमा कर सकता है, देवता नहीं कर सकता। मनुष्य हृदयसे लाचार है, देवता नियमका कठोर प्रवर्तयिता है। मनुष्य नियमसे विचलित हो जाता है, पर देवताकी कुटिल भृकुटि नियमकी निरन्तर रखवाली करती है। मनुष्य इसलिए बडा होता है कि वह ग़लती कर सकता है, देवता इसलिए बडा है कि वह नियमका नियन्ता है। सो कुबेरने उसे शाप दे दिया।

उस बेचारेकी महिमा कम हो गई। उसका देवत्व जाता रहा। कहॉ जाय, क्या करे ? शहर अच्छे नहीं लगते, जगलोमें मन नहीं रमता, जीवनमे पहली बार प्रियाका दु सह वियोग सहना पडा। उसने रामगिरिके पवित्र आश्रममें अपनी बस्ती बनाई। बड़े-बडे घनच्छाय वृक्षोसे आश्रम लहलहा रहा था और ठंडे पानीके वे पवित्र सोते यहॉ काफी संख्यामे थे, जिनमें जनकनंदिनीने न-जाने कितनी बार स्नान किया था। विरहकी बेचैनी काटनेके लिए इससे अच्छा स्थान नहीं चुना जा सकता था। रामसे बडा विरही और कौन हो सकता है ? और इतना अपार धैर्य और किसमें मिल सकता है ? अपने हाथोंसे राम और सीताने जो पेड लगाए थे, उनकी शीतल छायासे बढकर शामक वस्तु और क्या हो सकती है ? यक्षने बहुत सोच-समझकर, निहायत अक्लमन्दीसे यही स्थान चुना—पवित्र, शीतल और शामक।

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥

रामगिरि सरगुजा-रियासतकी कोई छोटी-सी पहाडी है। एक समतल भूमिपरसे यह पहाड़ी उठी है। बहुत ऊँची नहीं है। लेकिन इसके उत्तरकी ओर और उत्तर-पूर्वकी ओर काफ़ी ऊँची पर्वत-मालाएँ है। पहाड जहाँ थोड़ा समतल होकर नीचेकी ओर ढलता है, उस ढलावको संस्कृत मे 'सानु' या 'पर्वत-नितम्ब' कहते है। रामगिरिके ढलाव बडे मनोरम है। बेचारा यक्ष आठ महीने तो किसी प्रकार काट गया, पर अचानक आपाढ मासकी पहली तिथिको रामगिरिके सानु-देशमें लगे हुए एक काले मेघको देखकर व्याकुल हो उठा। वर्षाका सुहावना काल किसे नहीं व्याकुल कर देता ? यक्ष बेचारा तो यो ही विरहका मारा था। जब आसमान मेघोसे, पृथ्वी जलधारासे, दिशाएँ विद्युल्लताओसे, वन-कुञ्ज पुष्पोसे और नदियाँ नवीन जल-राशिसे भरती रहती है, तो मनुष्यका लाचार हृदय भी अकारण औत्सुक्यसे भरने लगता है—जैसे कुछ अन-जाना खो गया हो, कुछ अनबीता हो गया हो। विरही यक्षने पर्वतके सानु-देशपर सटे हुए काले मेघको देखा। कैसा देखा ? जैसे कोई काला मतवाला हाथी पर्वतके सानु-देशपर ढूँसा मारनेका खेल खेल रहा हो ! किसी दिन इन्द्रके मतवाले हाथीने इसी प्रकार ढूँसा मारकर कुबेरका बगीचा बरबाद कर दिया

था। यक्षका सोनेका संसार धूलमे मिल गया। वह दुनियाके एक कोनेमे फेक दिया गया, प्रियासे दूर—बहुत दूर। आज यह मेघ भी मतवाले हाथीके समान पर्वतके सानु-देशपर ढूॅसा मार रहा है। यक्षका हृदय चचल हो उठा। उसे अपनी प्रियाका ध्यान आया—तपे हुए सोनेके समान वर्ण, छरहरा शरीर, नुकीले दॉत, पके बिंब-फलके समान अधर, चकित हरिणीके समान नेत्र—विधाताकी मानो पहली रचना हो, जब उनके पास सब सामग्री पूरी मात्रामें थी, कहीं उन्होने कृपणता नहीं दिखाई, शोभाकी खानि, सौन्दर्यकी तरंगिणी, कमनीयताकी मूर्त्ति। हा विधाता, आज फिर यह हाथी आया! क्या अनर्थ करेगा यह? लेकिन यक्षने ध्यानसे देखा, यह हाथीके समान दिखाई देनेवाला जीव हाथी नहीं है, पहाडपर अटका हुआ मेघ है। भीगी हवाके झोंकोसे हिल रहा है, आगे बढ़ता है, पीछे हटता है, झूमता है, झमकता है! ना, यह ढूॅसा मारनेवाला हाथी नहीं है। यह तो हवाके झोकेसे झूमनेवाला मेघ है। विरहसे उसका शरीर वहुत जजर हो गया था, हाथमेका सुवण ककण ढीला होकर खिसक गया था, जसे पतझडके मौसममे खडा देवदारुका वृक्ष हो—श्री-हीन, पौरुप-हीन। 'अबला'के वियोगमे ऐसी निर्बलता भी आ जाती है!

आठ मास बीत गए, पर अब नहीं सहा जाता। प्रियावियोगके आठ मास! रामगिरिका कोना-कोना रामप्रेममय जीवनकी स्मृतियॉ ताजी करता रहता था। कनक-वलयके भ्रंश होनेसे मालूम हुआ कि अब शरीर असमर्थ हो गया है। अब नहीं सहा जाएगा और इसी बीच आषाढका प्रथम दिवस, पर्वतके सानु-देशपर ढूॅसा मारनेवाले मतवाले हाथी-सा दिखनेवाला यह काला मेघ! हा राम!

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥

विरहका मारा यक्ष मेघके सामने आकर खडा हो गया । मेघ ही तो है ! बलिहारी है इस मसृण-मेदुर कान्तिकी ! राजराज कुबेरके उस हतभाग्य अनुचरकी आँखोंमे आँसू आए और आकर रुक गए । कितनी भक्ति और निष्ठाके साथ उसने मालिककी सेवा की थी और कितने दिनो तक ! जरा-सी गलतीपर उन्हें क्या उसे ऐसा दण्ड देना चाहिए था ? आज वह इस नील-मेदुर कान्तिवाले मेघके सामने ऐसा जबदा खडा है कि आँसू भी नहीं निकल पा रहे हैं। मेघको देखकर सुखी लोगोंका चित्त भी कुछ और-का-और हो जाता है, विरही तो विरही है । जिनके प्रणयी नजदीक है—इतने नज़दीक कि गलेसे गला उलझा हुआ—वे भी व्याकुल हो जाते हैं; फिर उन लोगोकी क्या अवस्था होगी, जो प्रियसे दूर हो, जहाँ चिट्ठी-पत्री भी दुर्लभ हो ! यक्ष यही सोचता हुआ देर तक मेघके सामने खडा रहा । पर खडा क्या हुआ जाता था ? उत्कठा जगाने-वाले मेघके सामने खड़ा होना क्या सहज है ? फिर भी वह खडा रहा, देर तक खड़ा रहा । उसके हृदय में तूफान आए और गए—पुरानी बातें एक-एक करके उठीं और विलीन हुईं । क्या था, और क्या हो गया ! वह 'अन्तर्बाष्प' हो रहा । आँसुओका पारावार भीतर ही विक्षुभित हो रहा था, बाहर उसका कोई चिह्न नहीं

दिखाई दे रहा था, जैसे आँधी आनेके पहले थमथमाया हुआ वायु-मंडल हो।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्बाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
कंठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥३॥

कैलासपर वर्षा जरा देरसे शुरू होती है। मध्यदेशमे आषाढ़की पहली तिथिको ही मेघ दीख गया, किन्तु वहाँ अभी देर है। सावनके महीनेमे वहाँ झमाझम पानी बरसने लगता है। यक्षने व्याकुल भावसे सोचा कि मेरी यह अवस्था है, तो बेचारी उस कोमल बालिकाकी क्या दशा होगी? सावनके महीनेमे जब परत पर-परतके समान सजी हुई मेघमालासे आकाश भर जायगा, पहाडो-पर नाचनेवाले मयूर जब हर मेघ-निःस्वनके तालपर छमाछम नाचते रहेंगे और नीचे धरती कदली पुष्पोंसे गमगमा उठेगी, तो विरहिणी किधर दृष्टि ले जायगी? सब ओर केवल हूक पैदा करनेवाले दृश्य होगे—केवल बेध देनेवाली शोभा! सावनके महीनेको संस्कृतमें 'नभस्' कहते है। सचमुच ही इस महीनेमे आसमान धरतीपर उतर आता है। क्या होगा उस प्रेम-पुत्तलिकाका उस विकराल सावनमे? इन दिनो तो वह किसी प्रकार दिन गिन लेती होगी, वीणा बजाकर मन बहला लेती होगी, मुखरा सारिकासे प्रियका नाम सुन लेती होगी, चित्रकर्ममे विश्राम पा लेती होगी; किन्तु सावनके महीनेमें जब एक ही साथ नर्त्तमान मयूर और परितृप्त चातककी

पुकारका, उद्भिन्न-केसर कदम्ब और उद्घाटित-पटला मालतीकी भीनी-भीनी गधका और सबके ऊपर रिमझिम-रिमझिम बरसनेवाले बादलोकी झड़ीका आक्रमण होगा, तो क्या वह धैर्य रख सकेगी ? हा विधाता, सावनमे यक्षप्रिया कैसे बचेगी !

और सावनके आनेमे देर ही कितनी है ? वह सिर पर आ गया है—बिल्कुल प्रत्यासन्न । दयिता—प्रिया—के प्राणोका कुछ अवलब होना चाहिए। कुछ तो करना ही चाहिए। और कुछ नही, तो प्रियका कुशल-संवाद भी मामूली सहारा नहीं होता। परन्तु कौन ले जायगा यह संवाद ? रास्तेमें जाने कितनी नदियॉ है, कितने पहाड है, वर्षाका भयकर मार्ग-रोधी काल है। बडे-बडे राजे भी इन दिनों घरसे निकलनेकी हिम्मत नहीं करते। परिव्राजक जन भी चुप-चाप कहीं बैठ रहते है। इस दुर्घट कालमे कौन सन्देशा ले जायगा ? सावन तक सन्देशा अवश्य पहुँच जाना चाहिए। रामचन्द्रका सन्देशा तो महाबलवान हनूमान ले गए थे। पर यक्षको ऐसा दूत कहॉ मिलेगा ? ना, यह असभव बात है। यक्षने व्याकुल भावसे सोचा कि कौन कामचारी ऐसा है, जो उसका सदेशा ले जाए। सदेशवाहकके पहले ही मेघ पहुँचा, तो फिर कोई आशा नही, प्रियाके प्राण-पखेरू उड जाऍगे। फिर कहॉका सन्देशा और कहॉका प्रेम ! जब सन्देशवाहकके पहले मेघ ही सावनमे अलकापुरीमे पहुँचेगा, तो क्यो न मेघको ही सदेशवाहक बनाया जाय ? यक्षका चेहरा क्षण-भरमे खिल उठा। इतनी सीधी-सी बात समझनेमें इतनी देर लगी ! उसने तुरत ताजे कुरैयाके फूलोको तोड़कर प्रीति-स्निग्ध कठसे मेघको भेंट किए। स्वागत है, नवीन

जीवन ले आनेवाले प्रेम-वाहक बलाहक ! स्वागत है। यह अर्घ्य ग्रहण करो, श्रद्धा और प्रीतिका अर्घ्य। स्वागत है, नील मेदुर कान्तिवाले मोहन घनश्याम, स्वागत है !

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीविताालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

लेकिन यह तो पागलपनकी हद है ! 'धाम-धूम-नीर औ समीर-नकौ सन्निपात, ऐसो जड़ मेघ कहा दूत-काज करि है ?'—आज तक यह हुआ भी है ? धुएँ, प्रकाश, जल और वायुसे बना हुआ मेघ कहाँ, और संदेश ले जानेवाला चतुर संदेशवाहक कहाँ ! यक्षका दिमाग़ खराब हो गया क्या ? वररुचिने बताया है कि प्रेमपत्र ले जानेवालेको बहुत सावधान होना चाहिए। उसे हर अवस्थाकी सुकुमारताका ज्ञान होना चाहिए। हर्षातिरेकसे विरहीके प्राण-पखेरू उड जाते है, कभी लम्बी भूमिकासे उनका दम घुट जाता है, कभी अननुकूल लोगोकी संगतिमें बैठे हुए विरही शुभ सन्देशके फल-स्वरूप कष्ट पाने लगते हैं—हज़ार बातोका ध्यान रखना होता है। और यह भाग्यहीन यक्ष इस जड़ मेघको प्रेम-सन्देशका वाहक बनाना चाहता है !

मगर यक्षको यह सब सोचनेकी फ़ुरसत नहीं थी। वह कामना-ओसे कातर था, औत्सुक्यसे आर्त्त था। 'आरतके चित रहै न चेतू'—वह होशमे नही था। ऐसा प्रायः देखा गया है कि प्रेम—

वियोगकी पीडासे जो लोग व्यथित होते हैं, वे चेतन-अचेतन, बडे-छोटे सबके सामने दयनीय होकर—कृपण होकर—उपस्थित होते है। मानो हर आदमी उसके साथ सहानुभूति ही दिखाएगा, हर ईंट-पत्थर उसकी सहायता ही कर देगा ! क्यो ऐसा होता है ? क्या प्रेम-दशामें उत्थित व्यक्ति संसारके प्रत्येक जड-चेतनके भीतर किसी अन्तर्विलीन विराट् चेतनाका संधान पा जाता है ? जरूर पा जाता होगा। यक्ष तो अवश्य पानेमे समर्थ हुआ था। उसने मेघको परम सहानुभूति-सम्पन्न मित्रके रूपमे ही देखा; उसने हृदय गला देने-वाला सन्देश भेजा। अत्यन्त विश्वसनीय घनिष्ठ मित्रके सिवा और किसीसे यह सन्देश नही कहा जा सकता। उसे आप पागल कहे, प्रकृतिकृपण कहे; पर उसने जगत्के भीतर निरन्तर स्पन्दित होनेवाली विराट् चेतनाको पहचान लिया था।

धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

पुरानी कहानीका कथामुख या भूमिका-भाग इतना ही है। आधुनिक पाठक कुछ और जानना चाहेगा। यक्ष उस समय—किस समय ? प्रात काल, दोपहरको या सन्ध्या समय ?—किधर मुँह करके बैठा था ? मेघ पर्वतके किस किनारे लगा हुआ था ? इस सम्बन्धमे कालिदासने कुछ नहीं बताया। यक्षका नाम तक तो बताया ही नही, फिर अधिक की क्या आशा की जाय ? मगर हवा

जरूर दक्षिणसे आ रही थी और मेघ महाशय भी उत्तरकी ओर चलनेको प्रस्तुत जान पडते है। अनुमान किया जा सकता है कि इस यक्ष जैसा विरही सदा उत्तरकी ओर मुँह करके बैठा रहता होगा। उसकी प्रिया उत्तरकी ओर ही रहती थी। रामगिरिके दक्षिणी किनारेपर वह उत्तरकी ओर मुँह किए बैठा होगा, उदास और कातर। सामनेकी किसी चोटीके निम्नतर ढलावके पास मेघ-रूपी हाथी ढूँसा मारनेका खेल खेल रहा होगा। समय कदाचित् संध्या-कालका हो। इसी समय उसके चेतनाचेतनविवेकके ह्रास होनेकी सबसे अधिक संभावना है। कहते है, विरही इसी समय सबसे अधिक व्याकुल होता है और इसी समय वह सहारा ढूँढता फिरता है। इस समय सहारा नही मिलनेसे व्याकुलता पागलपनकी सीमातक पहुँच जाती है। अपभ्रंशके कविने एक नवीन विरहकी सताई विरहिणीसे कहलवाया है कि मैं समझती थी कि प्रिय-विरहिता बालाओंका कोई-न-कोई सायंकाल अवश्य धरहर करनेवाला मिल जाता होगा; पर यह धारणा एकदम गलत साबित हुई। इस समय तो कम्बख्त चॉद भी—जो शीतलताके लिए बहुत प्रसिद्ध है—ऐसा तपता है, जैसा प्रलय-कालमे सूर्य तपता है!

> मइँ जाणिउँ पिय विरहियहँ, कवि धरु होइ वियालि।
> णवर मियंकु वितह तवइ, जह दिणयरु खय गालि॥

मगर यक्ष इतना अनुभवहीन विरही नही था। वह जानता था कि विधाता जब वाम होता है, तो चित्रमे भी प्रिय कल्पना व्यर्थ हो जाती है। स्वप्नमें भी मिलन असफल रह जाता है। कोई भी

युक्ति काम नही करती। फिर भी दिनमे उसे कुछ-न-कुछ सहारा मिल जाता था। हरिणीके नयनोमे, वृक्षोके अरुण किसलयोमे, पद्मके वेधक कोरकोमे, प्रियगु लताकी झूमती वल्लरीमे प्रियाके किसी-न-किसी अगका साम्य मिल ही जाता था। यद्यपि उसे इस बातका बडा दुःख था कि उसे एक ही जगह सब अंगोका साम्य नहीं मिल पाता। लेकिन जब भाग्य खोटा हो, तो इतना तो सहना ही पडता है। सन्ध्या समय जब धीरे-धीरे अन्धकार धरती-तलपर उतरने लगता और सब-कुछपर घने काले अजनको पोत देता, तो यह सहारा भी जाता रहता। निश्चय ही उस समय उसका मन सबसे अधिक उत्क्षिप्त होता होगा। मतवाले काले हाथी-जैसा दिखने-वाला मेघ निश्चय ही सायकाल दिखा होगा। कालिदासने कुछ सोचकर ही ये सब बाते नही बताईं। वे चाहते, तो सन्ध्याका ऐसा मनोरम चित्र खींच देते कि बस, पढते ही बनता। पर उन्होने इस पचड़ेको छोड़ दिया। जो छूट गया, उसे छूटा ही रहने दिया जाय।

२

स्वागत-वचन बोलनेके बाद यक्ष सोचने लगा कि क्या उपाय करूँ कि यह मेघ प्रसन्न होकर मेरा काम कर दे। कुछ ऐसा कहना चाहिए, जिससे पहले ही वाक्यमे यह सन्तुष्ट हो जाय। कहीं ऐसा न हो कि प्रथम वाक्यसे ही नाराज हो जाय। जिससे काम लेना हो, उसकी थोडी खुशामद तो करनी ही चाहिए। प्रिय सत्यके बोलनेका आदेश तो शास्त्रने भी दे रखा है। सबसे बड़ी खुशामद

वंशकी प्रशंसा है। कम लोग होगे, जो इस अस्त्रसे घायल न हो जाते हो। यक्षका दिमाग थोड़ा गड़बड जरूर हो गया था, लेकिन उसके अन्तर्गूढ़ मानस-भाण्डारमे विचार-शृंखला बनी हुई थी। केवल ऊपरी सतहपर आलोडनका वेग अधिक था, गहराईमे विशेष अन्तर नहीं आया था। इसीलिए उसने ठीक ढंगसे—शास्त्र-नियमोंके बिल्कुल अनुकूल रूपमें—खुशामद शुरू की। बोला—“भाई मेघ, मै तुम्हें जानता हूँ, तुम्हारे पुरखोको जानता हूँ। ऐसा कौन होगा, जो पुष्कर और आवर्तक-जैसे महान् मेघोको न जानता हो! महाकाल जब अपनी सृष्टि-रचनाकी क्रीड़ाका उपसंहार करना चाहते हैं, तो कौन उनकी सहायता करता है? कौन अपने प्रलयंकर गर्जनो और धारासार वर्षणोसे त्रैलोक्यको विकम्पित कर देता है? सारा संसार पुष्कर और आवर्तक-जैसे महान् मेघोकी कीर्त्तिसे परिचित है। ऐसे प्रतापी कुलमे तुम्हारा जन्म है; तुम इस भुवनविदित वंशमे उत्पन्न हुए हो। महान् कुलमें महान् लोग ही पैदा होते है। शिवकी जटासे ही वीरभद्र उत्पन्न हो सकते है। समुद्रसे ही कौस्तुभका जन्म सभव है। ऊँचे कुलमें ही महान् पुरुष पैदा होते है। मैं तुम्हारे वंशको जानता हूँ, और तुम्हे भी जानता हूँ। तुम इन्द्रके प्रकृति-पुरुष हो—पब्लिक-रिलेशस-आफिसर! तुम ही प्रजा—प्रकृति—से उनका सम्बन्ध स्थापित करते हो। तुम्हारे ही बलपर इन्द्रकी सारी लोकप्रियता है। तुम ऐसे-वैसे अफ़सर नहीं हो। काम-रूप हो, इच्छानुसार रूप ग्रहण कर सकते हो। ज़रूरत पडनेपर भारी पड गए, फिर मौका देखकर हल्के बन गए। कभी ऐसा गर्जन किया कि दुनिया कॉप

उठी, कभी ऐसा बरसे कि संसार पानी-पानी हो गया। तुम्हारी कामरूपता मुझसे अपरिचित नहीं है। जैसा तुम्हारा कुल बडा वैसा ही तुम्हारा काम बडा। तुम मानसरोवरके सहस्रदल कमल हो। मै भाग्यका मारा प्रार्थी हूँ। एक छोटी-सी प्रार्थना लेकर तुम्हारे पास आया हूँ। देखो महान् मेघराज, मै प्रिय-वियुक्त हूँ। विधाता मुझसे अप्रसन्न है। सब-कुछ सोच-समझकर ही तुम्हारे पास आया हूँ। मेरी प्रार्थना तुम ठुकरा दोगे, तो भी मै बहुत विचलित नही हूँगा। बड़ोके पास याचना करनी चाहिए, अगर सफल नहीं भी हुई, तो अधमसे की गई सफल प्रार्थनासे अच्छी ही रहेगी। मै दान नही, दाता देखता हूँ। महत्त्वकी बात यह नही है कि क्या मिला? महत्त्वकी बात है कि किससे मिला। 'दान तो ना चाइ, चाइए दाता!' सो महान् मेघ, मैं बहुत दुःखी हूँ, बंधुसे—प्रियजनसे—दूर।

> जातं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्तकानां
> जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः।
> तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरबन्धुर्गतोऽहं
> याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

यक्षने यदि प्रिया-विरहसे अत्यन्त कातर होकर मानसिक सन्तुलन न खो दिया होता, तो थोडी देर रुककर देखता कि महान् मेघराजके चित्तपर प्रभाव क्या पड़ा। पुष्कर और आवर्तक-वंशके कुलदीपने कुछ समझा भी या नहीं। परन्तु यक्षको इतनी फ़ुरसत नहीं थी। फिर इतना शास्त्रशुद्ध युक्ति-तर्क-संगत

स्तुति-वाक्य कभी व्यर्थ हो सकता है? जरूर मेघने उसकी प्रार्थना सुन ली है। उसने कल्पनाके नेत्रोंसे देखा कि मेघ-सावधान हो गया है। उसने ढूँसा मारनेकी क्रीडा छोड दी है। शायद संध्या थोडी और गाढ हो आई थी और भीगी हवा कुछ और आर्द्र होकर स्तब्ध हो गई थी और इसीलिए मेघकी चपलता कम हो गई थी। यक्षका हृदय गद्‌गद् हो गया। विधाता आज वहुत अप्रसन्न नहीं है, मेघ प्रार्थना सुनना चाहता है। मानो प्रसन्न हास्यके साथ पूछ रहा है—'कहो, क्या कहना चाहते हो, अवहित हूँ।' यक्षने कातर भावसे कहा—

सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
वाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चंद्रिकाधौतहर्म्या ॥७॥

'हे जलद, तुम सतप्त व्यक्तियोको शरण देते हो। मुझसे वडा संतप्त और कौन होगा? मै तुम्हारी शरण आया हूँ। देखो, कुवेरके क्रोधसे मेरा सत्यानाश हो गया है। मै अपनी प्राणप्रियासे वियुक्त हो गया हूँ। उसीके पास तुम्हे मेरा सन्देश ले जाना है। यक्षेश्वरोकी जो वस्ती अलका है, वहीं वह रहती है। अलका देखने-लायक नगरी है। उसमे वडे-वडे हर्म्य है। 'हर्म्य' समझ गए न? इधर लोग धनिकोके मकानको हर्म्य कहने लगे हैं। लेकिन असली वात यह है कि धनसेठोकी धनी अट्टालिकाओसे भरी वस्तीमें वहुत कम मकान ऐसे होते है, जिनमे घर्म या धूप पहुँच सके। जो वहुत ऊँचे

होते हैं, वे ही 'घर्म्य' हो पाते हैं। 'घर्म्य' शब्द ही ज़रा मुलायम होकर 'हर्म्य' वन गया है। 'हर्म्य' अर्थात् वे ऊँची अट्टालिकाएँ, जिनके ऊपरी तल्लेमें अनायास धूप पहुँच जाती हो। अलकामे ऐसे हर्म्योंकी ठेलम-ठेल है। और इन हर्म्योंमे धूप जो आती है सो तो आती ही है, इनकी वडी भारी विशेपता यह है कि ये नित्य चॉदनीसे धुलते रहते हैं। कसे? नगरीके वाहरी उद्यानमे शिवजी रहते है और उनके सिरमें सदा चन्द्रमाकी कला वर्तमान रहती है, उसीसे ये धुलते रहते है। नहीं प्यारे, तुमने ठीक नहीं समझा। आसमानसे जो चॉदनी वरसती है, उससे महल भीज सकते है, धुलते नहीं। किन्तु अलकाकी अट्टालिकाएँ शिव-शिर स्थिता चन्द्रकलासे धुलती रहती है। ऊपरसे नीचे, नीचेसे ऊपर, दाहिनेसे वाएँ और वाएँसे दाहिने न-जाने कितनी वार यह चॉदनी अट्टालिकाओको अपनी पवित्र तरंगोसे धोती रहती है। जानते हो क्यो? नटराज जव उल्लसित होकर ताण्डव-लिप्त होते है, तो चन्द्रकलाको सैकडो चारियोमे घूमना पडता है, वीसियो अंगहारोंमे विलसित होना पड़ता है और डमरूके ताल-तालपर जव उनकी चचल भ्रूकुटियॉ थिरक उठती हैं, तो चन्द्रकला निरन्तर तरंगमाला विकीर्ण करती रहती है। इसी-लिए कहता हूँ मित्र, अलकाकी अट्टालिकाएँ चन्द्र-किरणोसे निरन्तर धौत होती रहती हैं।

यक्ष जानता था और उसे आशंका थी कि कामचारी मेघ भी जानता ही होगा कि ससारमे सिर्फ़ दो नगरियोको यह सौभाग्य प्राप्त है—अलकाको और काशीको। दोनो ही धूर्जटिके आनन्द-लोल ताण्डवसे नित्य उल्लसित रहती हैं, दोनोकी अट्टालिकाएँ हर-शिरोविहारिणी चन्द्रकलाकी पवित्र तरंगोसे धुलती रहती

हैं। परन्तु दोनोंमें अन्तर भी है। काशी साधकोंकी पुरी है, अलका सिद्धोंकी; काशीका साधक ऊपर उठता है, अलकाके भोगी लोगोका पुण्य निरन्तर क्षीण होता रहता है; काशी कर्म-क्षेत्र है, अलका भोग-क्षेत्र। मेघ कह सकता है कि उसे यदि 'हर-शिरश्चन्द्रिकाधातहर्म्या' नगरी देखनी ही हो, तो वह काशी चला जायगा, अलका क्यो जायगा? मर्त्यवासी कर्मके प्रेमी हैं, देवताओकी भोग-भूमिमें जाकर वे मूर्ख क्यो वनें? ठीक है, परन्तु काशीके शिवका ताण्डव आरूढ़ साधक देख पाते हैं, आरुरुक्षुको वह नहीं दीखता और अलकामें यह सब झमेला नहीं है। इसीलिए वहाँ अनायास ही शिवके ताण्डवका नयनहारी दृश्य देखना सम्भव है। काशीमे बसनेकी सलाह दी जाती है, अलकामे दो-चार दिनके लिए घूमने-फिरनेकी। इसीलिए यक्ष बिना साँस रोके सब कह गया—सन्देश ले जाना है तुम्हें (वहीं बस नहीं जाना है), मैं कुबेरके क्रोधका शिकार हूँ, इसलिए यहाँ दीख रहा हूँ (इस पहाडका निवासी नहीं हूँ), तुम्हें अलका जाना है (किसी मामूली शहरमें नहीं), वहाँ धूर्जटिके अपूर्व ताण्डवसे ताण्डवमान चन्द्र-मरीचियोकी अपूर्व तरंगमाला दिखेगी (बिना कठोर साधनाके तुम और कहीं यह नही पा सकते) और सबसे बढकर सन्तापदग्ध विरहिणीको शीतल करना है (जो तुम्हारे-जैसे कुलीनका स्वाभाविक धर्म है); सो भाई, देरी मत करो।

अचानक यक्षने देखा कि मेघके ऊपर तो सिरेपर हल्की-सी बिजलीकी रेखा थिरक गई! तो क्या मेघ मुस्करा रहा है? क्यों? शायद उसने समझ लिया है कि यक्ष खुशामद कर रहा है, स्वार्थ-सिद्धिके लिए प्रलोभन दिखा रहा है। चाटु-वाक्य और उत्कोच,

दोनोंका प्रयोग कर रहा है। उसका मन बैठ गया। ग़लत समझ रहे हो भाई मेघ, मै सिर्फ़ स्वार्थकी बात नही कर रहा हूँ। सचमुच तुम उपकारी हो। जब हवाके मार्गसे तुम चल पड़ोगे, तो प्रवासी पतियोकी प्रियाएँ बड़े विश्वासके साथ तुम्हें देखेंगी। हाय, हाय, दीर्घ-विरहसे उनके केश अस्त-व्यस्त हो गए होगे। जब दक्षिण-पूर्वी हवाके झोकेके साथ तुम आकाशमे आ जाओगे, तो वे बड़ी आशा लेकर तुम्हारी ओर ताकेगी। उस समय निश्चय ही उनके बिखरे केश हवाके झोकोसे और भी बिखर जायँगे, वे उडकर उनके मुँहपर पडने लगेगे। अहा, कितना करुण होगा वह विलोल-अलक मुख-मण्डल! अपनी किसलयके समान लाल-लाल कोमल-कोमल अँगुलियोसे उन केशोको वे सँभालेगी और ऊपरकी ओर मुख करके तुम्हें आशाके साथ देखेंगी। तुम नही जानते प्यारे, कि विरहिणियोके हृदयमे तुम आशाका कसा प्रलय-पूर ला दोगे। तुम क्या जानो कि यह आशा व्यर्थ नही है? ऐसा कौन हतभाग्य प्रवासी पति होगा, जो तुम्हारी इस नील-मेदुर कान्तिको देखकर औत्सुक्य-चचल होकर घर लौटनेकी न सोचे। निखिल विश्वके कण-कणमें नवीन रूपमे उत्पन्न होनेकी जो व्याकुल वेदना है, आकर्षणका जो बंधन है, उसे तुम नया करते रहते हो। सुप्त प्रेमको जगानेका मोहनमंत्र विधाताने तुम्हींको सिखाया है। विरहिणी यदि तुम्हे देखकर आश्वस्त होती है, तो उसका आश्वस्त होना अकारण नहीं है। तुम हवापर उड़े नही कि विरही प्रवासियोकी दुनियामें घर पहुँचनेकी हडबड़ी जागी नहीं। मेरे-जैसा कोई भाग्यहीन पराधीन जन हो, तो बात दूसरी है; नहीं तो कोई भी स्वाधीन विरही भरे

आषाढमें प्रियासे दूर नहीं रह सकता। इसीलिए कहता हूँ, तुम अन्यथा न समझो। तुम सिर्फ़ मेरा नहीं, सारी दुनियाका उपकार करोगे।

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः॥८॥

तो अब देर मत करो। शुभस्य शीघ्रम्। यात्राका ऐसा सुन्दर क्षण तुम्हे नहीं मिल सकता। मन्द-मन्द चलनेवाली हवा तुम्हारे अनुकूल वह रही है। यह शुभ लक्षण है। बडे लोग यात्रा करनेवालोको 'शान्त और अनुकूल पवन' पानेका आशीर्वाद दिया करते है। कण्वने अपनी प्यारी कन्याको यात्राके समय 'शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पंथा.' कहकर आशीर्वाद दिया था। वह तुम्हे आज अनायास प्राप्त है। कितनी मीठी हवा है, कितनी शान्त, कितनी मन्थर! और तुम्हारे पीछेसे वह मन्द-मन्द चल रही है। यही तो शान्तानुकूल पवन है। मगर इतना ही नहीं है। शकुन भी पूर्ण रूपसे तुम्हारे अनुकूल है। बाईं ओर पपीहेका आ जाना यो ही बहुत शुभ शकुन है, फिर यह चातक तो तुम्हारा परमप्रिय संबंधी है। ऐसा प्रेमी दुर्लभ है। मर जायगा, मगर तुम्हारे सिवा और किसीका जल नहीं ग्रहण करेगा। देखो जरा उसका गर्वीला चेहरा! जान पड़ता है, त्रैलोक्यका राज पा गया है। आज यह सब प्रकारसे सगंध है, सम्बन्धोके मिलनेसे प्रसन्न,

गर्वयुक्त और प्रिया-मिलनकी आशासे उत्पन्न नैसर्गिक सौरभसे मंडित। कैसी मीठी आवाज है इसकी! वाह, आज शुभयात्राका वडा ही मनोहर योग है—शान्त आर अनुकूल पवन, वाम भागमे गर्वीले चातककी मधुर ध्वनि और और भी एक चीज़ जो इस समय तो नही दिखाई दे रही है, लेकिन तुम्हारे प्रस्थान करते ही ठीक पीछेसे आकर उपस्थित हो जायगी। वात यह है कि जव तुम आकाशमे थोडा ऊपर उठोगे, तो वलाकाओं (वक-वालाओं) को स्पष्ट हो जायगा कि अव उनके गर्भाधानके आनन्दोत्सवका समय आ गया और कतार वाँधकर तुम्हारे पीछे-पीछे निकल पडेगी। शायद तुम नहीं जानते कि यह तुम्हारा मसृण-मेदुर रूप कितना सुन्दर है! यह रूप नयन-सुभग है। 'नयन-सुभग' का अर्थ तुमने शायद नहीं समझा। 'सुभग' उस व्यक्तिको कहते है, जिसके भीतर स्वाभाविक रूपसे वह रंजन गुण रहता है, जिससे सहृदय लोग उसी प्रकार स्वयमेव आकृष्ट होते हैं, जिस प्रकार पुष्पके परिमलसे भ्रमर। उसके इस आन्तरिक वशीकरण धर्मको 'सौभाग्य' कहते हैं। विधाता सहृदयको अपने हाथसे जो दस गुण देते है, उनमें यह अन्तिम है। अन्तिम भी और श्रेष्ठ भी। ('रूपं वर्ण. प्रभा राग आभिजात्यं विलासिता। लावण्यं लक्षणं छाया सौभाग्यं चेत्यमी गुणा।) तुम मित्र, हर प्रकारसे सुभग हो—नयन-सुभग! तुम्हारा यह रूप क्या छिपाए छिपेगा? एक वार तुम आसमानमे उडान लो। देखो, जगत्का अशेप प्रीति-भाण्डार किस प्रकार उद्वेलित हो उठता है। शान्त और अनुकूल पवन, वाईं ओर गर्वीले चातकोंकी मधुर ध्वनि और पीछे-पीछे आनन्दोल्लासमें प्रमत्त वलाकाएँ—आहा, इतने शुभ शकुन एक साथ कहाँ मिलेगे?

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरंचातकस्ते सगन्धः।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमाबद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥९॥

यहाँ आकर यक्ष थोड़ा चुप होकर देखने लगा कि उसके स्तोक वाक्यो, प्रलोभनो और प्रोत्साहनोका क्या असर हुआ। पवन बहुत हल्की गतिसे वह रहा था। उपरले सिरेपर जो श्वेत वाष्पोंका कुण्डलित पटल था, उसमे कुछ हल्की हलचल दिखाई पडी। विरही नि.शेप जगत्के मनोभावको समझ लेता है। यक्षने भी मेघके सहानुभूति-संपन्न हृदयको समझ लिया। मेघ निस्सन्देह सहायता करनेको प्रस्तुत है, पर उसे आशका है कि इतने व्याकुल प्रेमीकी सुकुमार प्रिया क्या अबतक जीवित होगी! अलका तक जाकर अन्तमें यदि यही देखना पडा कि वह पतिप्राणा चल बसी है, तो यह परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। फिर मान लो जी ही रही हो, तो यह क्या संभव है कि अलकाके हरम (हर्म्य) मे अपरिचित मेघ महाशय घुस जाएँ और विना पिटे लौट आएँ? मेघके मस्तिष्ककी इस आशकाको यक्षने साफ़ देख लिया। उसने सोचा कि मेघको समझा देना चाहिए कि वह व्यर्थ परेशान हो रहा है। इतना भी क्या परेशान होना, बोला—भाई मेरे, अपनी भौजाईको तुम अवश्य पाओगे। बेचारी दिन गिन रही होगी। वह मरी नहीं है, मर नहीं सकती। परम पतिव्रता है वह। मुझे देखे बिना उसके प्राण निकल ही नहीं सकेंगे। सिर्फ़ इतना करो दोस्त, कि रुको मत। चले चलो। मेरी बात मानो, वह अवश्य मिलेगी। और तुम

तो उसके प्यारे देवर हुए, तुमसे क्या पर्दा हो सकता है भला! तुम्हारी पतिव्रता भौजाई निश्चित रूपसे जीवित है। प्राय. रमणियोके फूलके समान प्रेम-परायण हृदयको—जो प्रतिक्षण बिखर जानेकी स्थितिमे रहता है—आशाका बंधन बिखर जानेसे रोके रहता है। आशाका बंधन बड़ा कठोर होता है मित्र! तुम्हारी भौजाई भी उसीके बलपर जी रही होगी। उसकी आशा मामूली आशा नहीं है। पतिव्रताके परम पवित्र विश्वाससे वह लालित है। सँझौतीके समय दीपककी प्रथम लौके साथ वह प्रकाशित होती है, प्रदोप-कालमे भगवती तुलसीको निवेदित आरात्रिक प्रदीपके साथ नित्य उद्दीप्त होती है और प्रत्यूष-कालके उदीयमान नवभास्करकी रागारुण ज्योति-रश्मियोसे नित्य दृढ निबद्ध होती रहती है। उसकी एक-एक क्रियामे प्रिय-कल्याणकी मंगल-भावना है, प्रत्येक धड़कनमें प्रियके सकुशल आगमनकी दिव्य प्रार्थना है, प्रत्येक निःश्वासमे व्याकुल यह विनिवेदन है—'हे भगवान्, वे जहाँ हो, वहीं उनका मंगल हो, मेरा व्रत उनकी रक्षा करे, मेरी पूजा उनका कल्याण करे, मेरा पुण्य उन्हे विजयी बनावे!' पतिव्रताका आशाबंध इतना दुर्बल नहीं होता मित्र, कि इतनी जल्दी बिखर जाय। उनमे आत्म-दानका तेज होता है, कठोर संयमकी दृढता होती है और अनन्यगामी प्रेमका वज्रलेप होता है। मै कहता हूँ, मेरी बातपर विश्वास करो, तुम्हारी पतिपरायणा भ्रातृजाया जीवित है। दुर्बल वह अवश्य होगी, दिन गिनते-गिनते उसकी अँगुलियाँ ज़रूर नख-जर्जर हो गई होगी, परन्तु उसे तुम देखोगे अवश्य!

> तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
> मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।

आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥१०॥

क्या कहा ? साथी कहाँ है ? इतनी दूर अकेले कैसे जा सकोगे ? बड़े भोले दिखते हो सखे ! गुणी लोग अपने गुणसे प्राय अपरिचित होते हैं। पहले ही कह चुका हूँ, तुम सब प्रकारसे सुभग हो । तुम्हारे पास प्रेमी मित्र तो अनायास खिंच आएँगे। पुष्प कहीं भौंरोको निमत्रण देता है ? चुम्बक कहीं लोहेको पुकारता फिरता है ? समुद्र क्या नदियोकी खुशामद करता फिरता है ? नहीं, यह सौभाग्यधर्मका स्वाभाविक खिंचाव है। यह जो कण-कणमें खिंचाव है, ग्रह-तारा और भू-मण्डलमें आकर्प-रश्मियोका महाकर्प-जाल बिछा हुआ है, वह सहज आकर्पणकी महिमा है सखे ! तुम्हारा रूप 'नयन-सुभग' है। उसे देखते ही बलाकाएँ उत्सुक हो उठती हैं और तुम्हारा यह गर्जन 'श्रवण-सुभग' है। एक बार इससे वायु-मण्डलमें हल्का-सा कम्पन होने दो और फिर देखो कि धरतीका अशेप मातृत्व किस तेजीसे फट पड़ता है। मैं हैरान होकर सोचता हूँ कि कहाँसे शिलीन्ध्रों—कुकुरमुत्तो—की यह विशाल सेना एकाएक जाग उठती है ! जरा-सा वायुमडल तुम्हारे गर्जनसे कम्पित हुआ नहीं कि धरतीके कण-कणमें वेपथु-कंपन उत्पन्न हो जाते हैं। वह नि.शेप भावसे अपने अन्तरतरकी सारी महिमा न-जाने किस महा अनजानेको निवेदन करनेके लिए व्याकुल हो उठती है। पहले प्रकट होते हैं ये शोभन-शिलीन्ध्र—कोमल, अनाडंबर ! सृष्टिके अदनार शैशवके प्रतिरूप ! तुमको पता भी नहीं कि तुम्हारा श्रवण-सुभग गर्जन किस प्रकार धरतीको देखते

देखते उच्छिलीन्ध्र बनाकर उसकी अवन्ध्यताकी घोषणा करता है—मानो किसी विराट् चैतन्यकी विग्रहवती पुकार हो, मानो विपुल विश्वमे व्याप्त चेतनाके पुलकोद्गमको जगानेवाला मोहन वाक्य हो। कौन है, जो इस श्रवण-सुभग गर्जनको सुनकर तुम्हारे पीछे दौड़ पड़नेको व्याकुल न होगा? एक बात तो निश्चित है। तुम्हारे इस अकारण व्याकुल बना देनेवाले, अनायास उत्सुक कर देनेवाले—श्रवण-सुभग—गर्जनको सुनकर मानसरोवर जानेको उत्कंठित राजहस कमलिनी-लताके मृदुल किसलयोका पाथेय लेकर उड़ेगे और कैलास तक तुम्हारा साथ देगे। हंसोको तो तुम जानते हो मित्र! कितने व्याकुल हो उठते हैं तुम्हारे गर्जनसे! वे उडते है, उड़ते है, उड़ते है—अक्लात, अश्रान्त! कहाँ जाते है? मान-सरोवरको! क्यो जाते है? हाय-हाय, कहीं तुम उनकी व्याकुल पीड़ाको जान पाते! न-जाने कितने युगोसे विधाताने उनके हृदयमे यह व्याकुल चाचल्य भर दिया है। नित्य नवीन होते रहनेकी व्याकुल लालसा। सन्तान-परम्परामें अपने-आपको सुरक्षित रखनेकी दुर्दम्य वासना! क्यो ऐसा होता है? प्रजापतिकी सहायताके लिए विधाताने इतनी मीठी पीड़ा—पुष्प-बाणोकी इतनी निर्मम चोट—क्यो बनाई? कोई नहीं जानता सखे, कोई नहीं जानता कि क्या होगा इस अद्भुत सृष्टि-प्रक्रियाका। परन्तु जो हो, तुम निश्चित समझो, राजहसोका दल तुम्हारा अन्त तक साथ देगा। तुम्हारे श्रवण-सुभग गर्जनसे जगी हुई व्याकुल मधुर पीड़ा उन्हे चैनसे बैठने नहीं देगी। वे तुरन्त तुम्हारे साथ हो जाएँगे। साथीकी क्या कमी है?

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवन्ध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवण-सुभगं गर्जितं मानसोत्काः ।
आकैलासाद्विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥११॥

तो, अब देर मत करो। अपने प्रिय मित्र इस ऊँचे पर्वतको आलिंगन कर लो। इसकी मेखलाएँ लोकपूजित भगवान् रामचन्द्रके पवित्र चरणोंसे अंकित हैं। यह तुम्हारे सखा होनेके योग्य ही है। तुम भी ऊँचे, यह भी ऊँचा। तुम भी पवित्र, यह भी पवित्र। मैं जानता हूँ कि दीर्घ व्यवधानके बाद ही समय-समयपर तुम्हारा और इस महान् पर्वतका मिलन होता है और इसके तप्त शिखरोंपर जब तुम्हारी प्रथम वारि-धारा गिरती है, तो इससे उष्ण बाष्प निकलता है। यह उष्ण बाष्प और कुछ नहीं, दीर्घ व्यवधानके बाद मिले हुए मित्रके मिलनसे उत्पन्न गर्म आँसू ही हैं। इन उष्ण बाष्पोंको त्याग करके तुम्हारा मित्र अपने आन्तरिक प्रेमका ही परिचय देता है। ऐसे मित्रसे विदा लेना कष्टकर कर्त्तव्य है। पर बड़ोंको यह सब कष्टकर कर्त्तव्यपालन करने ही पड़ते हैं। कितने लोग उत्सुकताके साथ तुम्हारी बाट जोह रहे हैं, कितने लोग तुम्हारी सहायता बिना सूखे जा रहे हैं। चलना तो है ही, विदा तो लेनी ही पड़ेगी। जो होना ही है, उसके लिए अधिक चिन्तित होनेसे लाभ नहीं। मित्रको आलिंगन करो, विदा लो। समय-समयपर तुम्हारा मिलन तो होता ही रहता है। फिर मिलनेका आश्वासन देकर निकल पड़ो।

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्गय शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो बाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥

३

यक्षने ध्यानसे देखा, तो स्पष्ट प्रतीत हुआ कि मेघराज संदेशहर बननेको प्रस्तुत है। उसके घने-चिकने श्यामल शरीरमे एकदम अचचल भाव आ गया था। पानी-पानी होकर गिर पड़नेको उत्सुक बाष्पपुंजका प्रत्येक कण निःस्पन्द हो गया था और निर्मल जल-सीकरोके भारसे उसका अंग-अग अवहित मनुष्यकी भॉति शान्त-स्तब्ध हो गया था। मेघ इस बार 'जलद' रूपमें दिखाई दिया। जल-दानसे समस्त जगत्को परितृप्त करनेके सामर्थ्यके कारण ही मेघको 'जलद' कहते है। पुंजित धूमराशिको यह नाम नहीं दिया जा सकता—'जलदानेन हि जलदो न हि जलदो पुञ्जितो धूमो' मेघ जलद है, अपने-आपको दलित द्राक्षाकी तरहसे निचोडकर दे डालनेवाला! जिस समय वह परिपूर्ण होता है, उस समय वह समस्त विश्वका है, उसके शरीरका एक-एक कण दूसरोकी तृप्तिके लिए है। नि.शेप भावसे अपने-आपको दे डालना ही वास्तविक सौन्दर्य है। जलद अपनेको नि शेप भावसे दे देता है, यही तो उसकी शोभा है—'रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमश्री.।'

परन्तु यक्षके मनमें यहीं एक आशंका हुई। मेघ उन यक्षोकी

जातिका नहीं है, जो केवल संचय ही करना जानते हैं: यह तो उन क्षणजन्मा मानवोंकी जातिका है, जो केवल लुटाना ही जानते है—दोनो हाथोसे लुटाते है, लुटाते हैं, लुटाते हैं ! ऐसे फक्कडोका क्या ठिकाना ! अड़े तो अड गए, ढले तो ढल गए। मेघ भी उन्ही मस्त-मौला लोगोकी टोलीका जीव है। किधर चलनेको हुए और किधर निकल गए। दुखी कहाँ नहीं हैं, संतप्त किस दिशामें नहीं मिलते ? जिसने दुखियोका दु ख ही दूर करनेका व्रत ले रखा हो, उसका कार्यक्रम क्या होगा ! ना, मेघ महाशयको रास्ता अवश्य बता देना चाहिए। पता नहीं ये फक्कड़राम झूमते-झूमते—लस्टम-पस्टम—जबतक अलका पहुँचेगे तब तक यक्षप्रियाकी क्या दुर्दशा हो जाए। दूसरे मेघ पहुँचकर न जाने क्या ऊधम मचा देंगे। यही सोचकर यक्षने कहा—भाई जलद, तुम्हारा व्रत मुझे मालूम है। तुम अपार जल-सम्पत्ति लुटानेके व्रती हो। मगर दोस्त, लुटानेसे ही तो लुटानेका व्रत नहीं निभता। कुछ संग्रह भी होना चाहिए। यह मै मानता हूँ कि संग्रह करनेके लिए ओछोंके पास नही जाना चाहिए, जिससे लिया जाय वह भी समान-धर्मा होना चाहिए—मस्त-मौला, कलकी फिकर न रखनेवाला। सो सुनो, तुम्हें ऐसा रास्ता बताए देता हूँ, जो तुम्हारे इस महान् व्रतका सहायक होगा। ऐसा रास्ता, जिससे चलो तो जितना चाहो लुटाओ और जितना चाहो फिर भर लो। ऐसी-ऐसी नदियाँ जो बिल्कुल तुम्हारी ही तरह फक्कड़, तुम्हारी ही तरह आत्मदानमें समर्थ और तुम्हारे एक इशारेपर अपना सर्वस्व तुम्हें दे देनेको कटिबद्ध ! धन्य है ये नदियाँ जो—पवित्र और निर्मल धाराको दिवारात्रि लुटा रही हैं, कभी रुकती नहीं, कभी थकती नहीं ! देखकर तुम्हारी

ऑख जुडा जाएँगी। और फिर ऐसे पर्वत बताऊँ कि तुम्हें रास्तेमे कोई कष्ट ही न हो। लबी यात्रा है, तुम उच्च स्तरके यात्री हो, कुछ ऊँचे-ऊँचे पर्वतोका पता नही रहेगा, तो कष्ट होगा तुम्हे। इसीलिए पहले मै तुम्हे उस मार्गको समझा दूँ जिसमे थक जानेपर विश्राम करने योग्य पर्वत मिलते रहेगे और जल-सम्पत्तिके चुक जानेपर उसे प्रचुर मात्रामें नदियोसे प्राप्त कर सकोगे। संदेशा बादमे सुनना। वह बड़ा हृदयद्रावक है, उसे तुम्हें अपने कानोसे पी जाना पड़ेगा। उस हृदयद्रावक 'श्रवणपेय' संदेशेको सुनकर क्या तुम एक क्षण भी रुक सकोगे ? इसीलिए कहता हूँ, पर्वतोपर विश्राम करते हुए और झरनोका ठडा पानी पीते हुए उड़ो। कमजोरी और थकान तो अवश्य अनुभव करोगे। इसी लिए उन शीतल झरनोकी बात बताए देता हूँ, जिनका पानी क्लांत होनेपर पी लोगे। इधर-उधर भटक गए, तो संदेशा ले जानेका कार्य व्यर्थ हो जायगा। रास्ता अवश्य समझ लो।

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य ॥१३॥

यहाँ जो यह सरस बेतोका जंगल देख रहे हो—जो मस्तीसे झूम रहा है और तुम्हारी फुहारोका आसरा किए बिना ही लहलहा रहा है—यहींसे तुम्हारी यात्रा शुरू होगी। यहाँसे तुम्हे उत्तरकी ओर चलना होगा। अभी तो तुम इस पर्वतके

सानुदेशपर ही अटके हो, इसके शिखरको पार करनेके लिए थोड़ा ऊपर उड़के चक्कर काटना होगा। मेरे दोस्त, रास्तेके विघ्न यहींसे शुरू हो जायँगे। जानते ही हो कि हिमालय और विंध्य पर्वत सिद्धोंके संचरणसे मोहन और पवित्र बने रहते हैं। जिस समय तुम आसमानमें थोड़ा-सा ऊपर उठकर उत्तरकी ओर बढनेके लिए उड़ान लोगे, उस समय तुम्हारी यह मृदुल-मेदुर छवि देखने ही योग्य होगी। सिद्धोंकी मुग्धवधुएँ आश्चर्यके साथ ऊपर मुँह करके देखेंगी और चकित होकर सोचेंगी कि कही हवा पहाड़के किसी शिखरको तो उड़ाए नहीं लिए जा रही है। उस चकित-चकित दृष्टिकी शोभाका क्या कहना! उनका दोष भी क्या है मित्र? तुम्हारा जब यह जल-भारसे भरित श्यामल शरीर आकाशमें उठेगा, तो उसकी गुरुता, उच्चता और वर्ण-सौन्दर्यको देखकर मुग्धा वधुएँ पहाड़की चोटी मान लें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? मै ठीक जानता हूँ दोस्त, उन 'बडरी अँखियान' को देखनेके बाद तुम्हारा मन वहाँ उलझ जाएगा। लेकिन रुकना मत, और भी उत्साहसे आगे बढ़ना। ये सिद्ध-वधुओंकी 'चकितहरिणीप्रेक्षणा' आँखें केवल शुभ यात्राका निर्देश करेंगी। और भी मोहन, और भी सुन्दर वस्तुएँ आगे तुम्हारे मार्गमें मिलनेवाली हैं!

लेकिन एक और भी विघ्न है। जिस बेत-बनके ऊपरसे उड़नेको कह रहा हूँ, उसे मैं 'निचुल-निकुंज' कहा करता हूँ। इसलिए ही नहीं कि बेनको संस्कृतमें 'निचुल' कहते हैं, बल्कि इसलिए कि महाकवि कालिदासके सहृदय मित्र 'निचुल' कविसे इसकी बड़ी समानता है। दोनों ही प्रतिकूल परिस्थितियोंमें सरस बने रह सके हैं। निचुल कवि विपत्तियोंसे म्लान नहीं हुआ,

दुःखोंसे कातर नही हुआ, प्रतिकूल परिस्थितियोमें सूख नही गया, सदा प्रसन्न, सदा सरस, सदा मस्त रहा ! इस वेत-वनमे उसके स्वभावकी झलक मिलती है। परन्तु इसके ऊपरसे जब तुम उड़ोगे और उत्तरकी ओर बढोगे, तो विंध्याटवीके घने जंगलोंमें पहुँचोगे। पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्र तक फैली हुई विंध्याटवी वड़ी विचित्र वनस्थली है। मरीच-पल्लव कुतरते हुए शुक-शावकोसे मनोहर, कम्पिल्ल तरुको झकझोरते हुए वानर-यूथोसे शोभित, जम्बूफलोके आस्वादनसे अभिमत्त भल्लूक युवकोसे भीषण और मदमत्त विशालकाय हाथियोंके संचरणसे भयंकर विन्ध्याटवी अपना उपमान आप ही है। रामगिरिके उत्तरके घने जंगलोमे विचरण करते हुए पर्वताकार हाथियोको देखकर तुम्हे भ्रम होगा कि वडे वडे दिग्गजोसे अध्युसित वनखण्डमे पहुँच गए हो। इस घने जगलको मैं 'दिङ्नागवन' कहता हूँ।

क्यो कहता हूँ, वताऊँ ? इन पर्वताकार हाथियोको दिङ्नाग या दिग्गज कहना तो ठीक ही है, परन्तु ये लोग कालिदासके प्रतिस्पर्धी बौद्धपंडित दिङ्नागसे अद्भुत समानता रखते हैं (और इन सरस निचुलोके स्वभावसे उनका पार्थक्य भी वहुत स्पष्ट है)। दिङ्नाग पडित वड़े शास्त्रार्थी थे। अपने तीक्ष्ण शरके समान वेध देनेवाले तर्कके मारे वे स्वयं परेशान रहते थे। तर्ककी ऑचसे उनकी सारी सहृदयता सूख गई थी। वे कालिदाससे भी भिड़ पड़े थे। भला तर्क-कर्कश पंडित और सहृदय रसवर्षी कविका क्या मुकावला ! परन्तु दिङ्नाग तो उस गॅवार पहलवानकी भॉति हर आदमीको ललकारा करते थे, जो सवकी महिमाकी परीक्षा पंजा लड़ाकर किया करता था। दिङ्नागको लोग पंजा लड़ानेवाला ही

कहने लगे थे। उन्होने ' हस्तवल-प्रकरण ' या ' मुष्टि-प्रकरण ' नामक ग्रंथ लिखा था। परिहासमें कालिदासके अनुयायियोने ' मुष्टि-प्रकरण ' का अर्थ कर लिया ' पंजा लडानेकी कला वतानेवाला ग्रथ ! ' इस प्रकार दिङ्नाग पंडित स्वय ' हस्तवल ' या ' मुष्टिवल ' के कायल थे। इधर विन्ध्याटवीके दानवाकार हाथी भी प्रतिस्पर्द्धियोंसे सूँड (या हाथ) उठाकर लड पडते हैं। अब वताओ, इन दिग्गजोको ' दिङ्नाग ' न कहूँ, तो क्या कहूँ ? सो, भाई, तुम्हे थोडा वचके रहना होगा। दिङ्नाग लोग तुमको निश्चय ही विराट् गजराज समझेंगे। मैने भी पहले तुम्हे पर्वत-सानुपर ढूँसा मारनेवाला हाथी ही समझा था। इन दिङ्नागोकी मोटी सूँडसे जो तुम उलझे, तो जल्दी छुटकारा नहीं मिलेगा। उसे वचा जाना।

अद्रेः शृंङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः।
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान् ॥१४॥

मूखासे कहाँ तक उलझोगे ? ' सरस निचुल निकुज 'से ' दिङ्नाग-वन ' का अन्तर तो समझ ही गए होगे।

इतना कहकर यक्षने दिङ्नाग-वनकी ओर देखा। क्या देखा ? धरती फोडकर निकला हुआ मनोहर इन्द्रधनुप आसमानके एक किनारेसे दूसरे किनारे तक फैल गया था। अहा, शोभा इसीको कहते है—ऐसा जान पड़ता था कि नाना रगके सहस्रो रत्नोकी मिलित प्रभा जगमग जगमग कर रही हो ! मानो किसी पनले मुँहवाली

बाँबीमें संचित मणिराशिसे प्रभाकी रंग-बिरंगी लहरें ऊपरकी ओर एक साथ फिंक रही हो—पतली-सी रंगीना प्रभा-रश्मि! कहीं यक्षके मित्र इस मेघके श्यामल मृदुल शरीरपर इन्द्र-धनुषकी यह प्रभा पड जाती! कितना मनोहर होता उस समय वह श्यामल शरीर! ऐसा जान पड़ता जैसे गोपाल लालके साँवले शरीरपर मयूरपिच्छोंकी प्रभा जगमगा रही हो। मगर असम्भव भी क्या है? मेघ जब निचुल-निकुंजसे ऊपर उठकर पश्चिमकी ओर उड़नेके लिए चक्कर काटेगा, तो निस्सन्देह इन्द्र-धनुषकी यह मनोहर शोभा उसे श्यामसुन्दरकी कान्ति प्रदान करेगी। उसने गद्‌गद्‌ भावसे कहा कि मित्र, मुझे बिल्कुल संदेह नहीं है कि आज तुम इस इन्द्रधनुषके योगसे नटवर-नागरकी शोभा धारण करोगे। यो ही तुम उपकारी मित्र हो—कृषिका सारा दारमदार तुम्हारे ही ऊपर है—फिर यह मोहन रूप! विश्वास मानो मित्र, जनपद-वधुओंकी आँखे तुम्हारे इस सौन्दर्यको पी जाना चाहेंगी। उन वधुओंमें शोभा, कान्ति और माधुर्य-जैसे सहज अयत्नज अल-करणोंकी कमी नहीं मिलेगी. किन्तु उन कृत्रिम विलास-लीलाओंका कहीं पता भी नहीं चलेगा, जो स्त्रीके रूपको मादक तो बना देते हैं, पर उसे देवत्वकी मर्यादासे च्युत कर देते हैं। स्त्रीका रूप संसारकी सबसे पवित्र वस्तु है। शोभा, कान्ति और माधुर्य उससे अनायास बरसते रहते है और देखनेवालेको शान्ति देते रहते हैं। किन्तु लीला, विलास, विच्छित्ति, मोट्टायित और कुट्टमितभाव देखने-वालेको मत्त बनाते है। तुम्हें अमृत मिलेगा, इतना निश्चित् है। शराब नहीं मिलेगी, यह भी तय है। उन प्रीतिस्निग्ध नयनोंका आदर दुर्लभ वस्तु है मित्र, वह पावन है, निर्मल है, शामक है। तुम्हे

थोड़ा पानी वहाँ बरसाना पड़ेगा। शरीर भी हल्का होगा, जी भी हल्का होगा। तत्काल जोती हुई धरतीपर जब तुम्हारी फुहारें पड़ेगी, तो सोंधी-सोंधी गन्ध निकलेगी और पहाड़की उपरले सतहकी समतल-भूमि सुगन्धिसे भर जायगी। थोड़ा-सा बरसोगे, तो शरीर हल्का हो जायगा, चालमें तेजी आ जायगी। जरा-सा पच्छिमकी ओर चलकर जो उत्तरकी ओर मुड़ोगे, तो सामने आम्रकूट—अमरकटक—पर्वत मिलेगा। लेकिन पच्छिमकी ओर मुड़ना ज़रूरी है, नही तो राम-गिरिके उत्तरके ऊँचे पहाड़ोमें अटक जाओगे।

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता-
द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेशस्य विष्णोः ॥ १५ ॥

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः।
सद्यःसीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किंचित्पश्चाद्व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥ १६ ॥

यक्ष सोचने लगा . आम्रकूट—अमरकटक—इधरकी पहाड़ियोंमें सबसे ऊँचा है, उसके चारो ओर ढालू सानुदेश है। इसीलिए इसे सानुमान् कहते हैं। संसारमें ऐसा पर्वत कदाचित् ही होगा, जिसके चारों किनारोंमें इस प्रकारकी सानुभूमियाँ हों। इस पर्वतसे चारों ओर नदियोका बहाव फैला है। मतलब यह कि यह इधर सबसे ऊँचा पर्वत है। जब मेघ अपनी वर्षासे इस पर्वतकी वनभूमियों-

में लगे प्रचण्ड दावानलको बुझा देगा, तो यह ऊँचा पर्वत उस मार्गश्रमसे क्लान्त उपकारी मित्रको क्या सिर-माथे नहीं लेगा? यह कैसे हो सकता है? क्षुद्र भी अपने उपकारी मित्रसे विमुख नहीं होता, फिर आम्रकूट तो आम्रकूट है—ऊँचा, मेघका ही समानधर्मा। निस्संदेह। आम्रकूट मेघको अपने मस्तकपर बैठायगा। वह भी एक विचित्र बात होगी। इस पर्वतके उपरले शिखरोंपर जगली आमोका गहन वन है—आम्रकूट नाम ही इन आमोके कारण पडा है। इनके फल पककर पीले हो जाते हैं और झड़कर वहीं गिरते हैं। उतनी ऊँचाईपर उनका कदरदान भी कौन है! इन पीले आमोके कारण सारा शिखर-देश ऊपरसे पाण्डुवर्णका दिखाई देता है। सिद्ध और विद्याधर लोग ही ऊपरसे इस पाण्डुर शोभाको देख सकते हैं। मर्त्यवासी उसका रस क्या जाने? अब उस पाण्डुर शोभाके ऊपर काले मसृण मेघके उतरनेसे अद्भुत शोभा निखर आयगी। कौन देखेगा उस शोभाको? केवल सिद्धोंके जोड़े—अमर-मिथुन! कैसी दिखेगी वह शोभा? जिसे मर्त्यवासी देख ही नहीं सकेंगे उसकी चर्चा भी क्या! लेकिन धरित्रीके उद्भिन्न-यौवन मोहन रूपकी कल्पना तो की ही जा सकती है। मेघ भी देवयोनिके जीवोंके समान ऊपर उड़ कर चलता है—समझ तो लेगा ही। इसीलिए मेघने प्रेमपूर्ण शब्दोंमें उसे बता दिया कि कैसी शोभाका गौरव उसे मिलने जा रहा है।

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः।

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥१७॥

छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥१८॥

यक्ष क्षण-भर स्थिर रहकर व्याकुल भावसे सोचने लगा कि आम्र-कूट पर्वतके वनचर-वधू-भुक्त निकुंजोंमें कुछ देर रुककर मेघ उड़ा जा रहा है—उसे याद आई नर्मदाकी हरहराती हुई धारा, जो आम्रकूटसे छोटे-छोटे सैकड़ों सोतोंके रूपमें बही हुई है और विंध्या-चलके ऊबड़-खाबड़ पथरीले—उपल-विषम—मार्गमें छितराकर बहती हुई ऊपरसे ऐसी दिखाई दे रही है, जैसे विशालकाय हाथीकी पीठपर झालरदार डोरिया चादर बिछी हो! नर्मदा सचमुच शक्ति-शालिनी नदी है। पर्वत-शिखरोंको काटती हुई, जामुनके घने जंग-लोंको चीरकर हरहराती हुई वह अजीब मस्तीसे बढ़ती है। हाथि-योंके तिक्त मद-जलसे उसका जल सुवासित है, जामुनोंकी निरन्तर झड़ती हुई फलराशिसे वह और भी मादक हो गई है। मेघ जा रहा है, बरसता हुआ, गरजता हुआ, कड़कता हुआ। उसके मनमें यक्ष-प्रिया तक शीघ्र पहुँच जानेकी उतावली है। वह रुककर नर्मदाका मद-जलसिक्त जंबूफल-सरसित पानी पी लेता है और आगे बढ़ता है—और भी, और भी तेज। ठीक भी तो है, अगर पानी पीकर मेघ भारी न हो ले, तो कौन जाने हवाका कौन-सा झोंका उसे

किधर उड़ा ले जाय। जो खाली होता है, वह हल्का होता है; जो भरा होता है वह भारी होता है!

> स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
> तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः।
> रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
> भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥१९॥

> तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
> र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः।
> अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
> रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥२०॥

यक्ष कल्पनाकी आँखोंसे देख रहा है कि मेघ भी ठीक ही जा रहा है। रास्ता भूलनेका प्रश्न ही नहीं है। अर्द्धोद्गत केसरोंसे हरित-कपिश बने हुए कदम्ब-कुसुमोंको चावके साथ निहारनेवाले भौंरे, कछारोंमें प्रथम मुकुलित कंदलीकी मुलायम डीभियोंको सतृष्ण भावसे टूँगते हुए हिरन और दावाग्निसे झुलसी हुई वन-भूमिसे प्रथम वृष्टिके कारण निकली हुई सोंधी गंधको सूँघकर मस्त बने हुए हाथी उसे राह बताते जा रहे हैं। वह बढ़ा जा रहा है, चिन्तित है, व्याकुल है, पर्वतोंके कुटज पुष्पसे सुरभित शिखरोंपर वह विश्राम अवश्य करता है, पर नाममात्रके लिए। वह तेजीसे उड़ता जा रहा है—शुक्ल अपांगों और सजल नयनोंसे मयूर उसका स्वागत करते हैं, पर मेघ उनकी भी माया काट जाता है। वह और आगे बढ़ता है। जिधर जाना

है उधर ही खेत लहलहा उठते हैं, उपवन चहक उठते हैं, जन-मडली उल्लासचंचल हो उठती है। मेघ सबको तृप्त करके, सबको प्रसन्न करके आगे बढता है। देखते-देखते दशार्ण देश आ जाता है। दशार्ण देश, जहाँ मेघके निकट आते ही पुष्पवाटिकाओंके वेडेमें लगे हुए नुकीली बालके समान पाण्डुर पुष्पोवाले केवड़ोसे वनभूमि पीली होकर चमक उठती है, पक्षियोंके नीडारंभके उद्योगसे गाँवके पेड चहचहा उठते हैं, और दूर देशसे आते हुए हंस कुछ दिनोंके लिए रुक जाते हैं। मेघ बढा जा रहा है।

रामगिरिसे दशार्ण तक मेघ लंबी उड़ान भरता है। यक्ष सोचता है, यो ही क्या यह दशार्णको भी पार कर जायगा। विंध्याटवीकी मस्तानी नदी वेत्रवतीकी, जो चट्टानोंको तोड़कर हरहराती हुई बह रही है, चंचल तरंगें लीलावतीकी विलास-लीलाओंका अनु-करण करती हैं। क्या मेघ इस दीर्घ-विरहिता प्रियाको भी छोड जायगा? ना मेरे दोस्त, यह ग़लती न करना। विदिशा (भेलसा) के पास इस अल्हड़ प्रेयसीको देखना तो जरा मृदु गर्जना कर देना, उसका चेहरा खिल जायगा, उसकी लहरोंमें विभ्रमवती नायिकाके भृकुटितर्जनकी-सी विलास-लीला खेल उठेगी। तुम झुकके उसका अधरामृत अवश्य पी लेना। ऐसी भी क्या जल्दी है! विरहका मारा हूँ, तो क्या दूसरोंकी विरह-वेदनाको समझनेमें भी ग़लती कर सकता हूँ? विन्ध्यके उपल-विषम मार्गमें निरन्तर दौड़ती हुई, दूर तक फैले हुए वनफलोंकी झाड़ियोंको दरेरती हुई, गिरती हुई, टूटती हुई, उठती हुई और फिर भी आगे बढ़ती हुई वेत्रवतीकी शोभा उपेक्षणीय नहीं है। हाय, वह कैसा

सत्यानाशी प्रेम है, जो इस प्रकार कठोर साधना कराता है ! वहाँ तुम्हारी सारी सहृदयताको चुनौती मिलेगी। ग़लती न करना दोस्त !

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ।
जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २१ ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान्गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २२ ॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥ २३ ॥

४

देखो मित्र, दशार्ण देश जितना ही सुन्दर है, उतना ही शानदार भी। इसकी राजधानी विदिशा नगरी दिगन्त तकमें ख्याति प्राप्त कर चुकी है। पश्चिमी समुद्र तटकी ओर जानेवाले यात्री विदिशा होते हुए जाते हैं और फिर दक्षिण-पश्चिमके व्यापारी जब पूर्वोत्तर किनारेपर और सुदूर प्रतिष्ठान, श्रावस्ती, कोसल और पाञ्चालकी

यात्रा करते हैं, तो उन्हें विदिशा अवश्य आना पडता है। दुर्दान्त हैहयवंशी राजाओंके कालसे ही इस नगरीकी कीर्ति दिग्-दिगन्तमे व्याप्त हो गई है। मौर्य नरपतियोने जिन तीक्ष्ण-धार तलवारोके बल-पर अपने साम्राज्यका विस्तार किया था, वे विदिशामे ही बनती थीं। महाराज अशोककी प्रिय महिषी इसी नगरीके आसपास कहीं रहती थीं। यद्यपि राजधानीके रूपमें आज इस नगरीका महत्त्व क्षीण हो गया है, तथापि जनताके हृदयमे उसे अब भी वही सम्मान प्राप्त है। शुंग-राजाओके अश्वमेध, राजसूय और वाजपेय यज्ञोने जन-चित्तको इतना आन्दोलित किया था कि सैकडो वर्षोंके राज्योके उत्थान-पतनके बाद भी जनता पुष्यमित्र और अग्निमित्रको ही चक्र-वर्ती राजा मानती आ रही है। जनताका यह मानना उचित भी है। यवन-राजा आन्तलिकितने भी विदिशाका लोहा माना था। उसका राजदूत हेलिओडोरस जिस दिन गरुड़ध्वजके साथ प्रचुर उपायन लेकर राजाधिराज भागभद्रके दरबारमें उपस्थित हुआ था, उस दिन दशार्णके जन-समुद्रमें मानो ज्वार आ गया था। पौर-जानपदोंके उस उल्लासने शुंग-सेनाओंकी विराट् जय-ध्वनिमें मिलकर सिन्धु-तटके उस पारकी म्लेच्छ-वाहिनीको चकित-कम्पित कर डाला था। विदिशाके विष्णुमन्दिरमें हेलिओडोरस द्वारा स्थापित गरुड़ध्वज आज भी दशार्णवासियोके चित्तमे गर्वका संचार करता है। वेतवा और चम्बल नदियोके संगमपर दूर तक फैली हुई विदिशा नगरी चक्रवर्ती राजाके अभावमें भी राजधानी कहलानेका गौरव प्राप्त करती है। उसके एक-एक कणमें दशार्णका स्वाभिमान मुखर हो रहा है। वेत्रवतीके तटपर दूर-दूर तक फैले हुए श्रेष्ठि-चत्वर और नागरक-सौध आज भी विदिशाकी कीर्ति देश-देशान्तरमें

फैलाते रहते हैं। विदिशामें श्री और समृद्धि तो आज भी है, किन्तु राजधानी न होनेके कारण और बाहरी आक्रमणके आतंकसे परित्राण पानेकी चिन्ता न होनेके कारण संयम नही रह गया है। यहाँके लोगोमे विलासिता तो बढ गई है, लेकिन दशार्ण जनपदके सीधे-सादे और तेजस्वी जन-पदवासियोके समान आत्म-गौरव और पौरुप-दर्पका भाव नहीं रह गया है। मित्र, तुम सहृदय हो; विदिशाके पौरजन और दशार्णके जानपद जनोंमें इन दिनो जो विपम मानसिक व्यवधान आ गया है, उसे समझनेमें तुम्हें देर नहीं लगेगी। विदिशामे दायित्वहीन विलासिता आ गई है, जो कामुकताका ही नामान्तर है। विदिशाके नागरक सौन्दर्यका नहीं, कामुकताका उपभोग करते हैं। इसलिए विदिशाकी हवासे बचना ही उचित है। दो-चार दिनसे अधिक टिकना अच्छा नहीं। तुम मनचले बटोही हो, अगर वहाँके राग-रंगमें उलझ गए, तो मेरा काम हो चुका! मैने पहले ही तुमको बताया है कि दशार्ण देशमे हंस थोड़े ही दिन रहते हैं। जो नीर-क्षीरका भेद समझ सकता है, वह विदिशाके आस-पास देर तक नहीं टिक सकता। तुम्हारे लिए भी प्रलोभन है। वेत्रवतीकी चचल तरंगें विलासवती नायिकाके भ्रू-भंगकी तरह तुम्हें अवश्य आकर्पित करेंगी। जिस समय तुम इस वेत्रवतीके स्वादु जलका पान करोगे, उस समय निस्सदेह भ्रू-भंगविलास-दक्षा छायावती नायिकाके अधर-पानका सुख पाओगे। किन्तु मित्र, उलझ न जाना। वेत्रवतीके तट-प्रान्तपर तुम्हारा जो मन्द-मन्द गर्जन होगा, वह निस्सन्देह उस नदीकी चंचल तरंगोमें और भी चंचलता ला देगा। तुम्हारा रूप नयन-सुभग है और तुम्हारा गर्जन कर्ण-सुभग। दोनों ही अनायास

प्रेमिक जनोंको इस प्रकार अकारण उत्सुक बना देते हैं, जिस प्रकार वसन्त-कालका पुष्पित सहकार भ्रमरावलीको अनायास चचल और उत्कंठित बना देता है। तुम्हारे इस नयन-सुभग रूप और श्रवण-सुभग गर्जनका मोहक आकर्षण बचाकर निकल जाय, ऐसी तरुणी कहाँ मिलेगी ? निसन्देह वेत्रवतीके तरग-चंचल हृदयकी उपेक्षा अनुचित होगी और तुम्हारे जैसे सहृदयसे इसकी आशा भी नहीं करनी चाहिए। परन्तु फिर भी मित्र, ज्यादा न उलझना। आखिर 'वेत्रवती' प्रियासे सावधान न रहोगे, तो किस दिन क्या आ बीते कौन कह सकता है ? इसीलिए थोड़ा-सा रुककर और थोड़ा-सा झुककर उस विभ्रोकवतीके 'सभ्रूभंग' मुखका रस लेकर आगे बढ जाना।

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविफलं कामुकत्वस्य लब्धा।
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मा-
त्सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥२४॥

विश्राम ही करना हो, तो तुम्हें जगह बताए देता हूँ। लेकिन विदिशामें तो हर्गिज़ न रुकना। अपने सरस हृदयका दुरुपयोग न कर बैठना।

इस विदिशा नगरीके समीप ही निचली पहाडी नामकी एक छोटी-सी पहाड़ी है। केवल नामसे नीची नहीं है, आजकल कामसे भी नीची हो गई है। जिन दिनों विदिशा अपने अनघ प्रतापके तेजसे सिन्धु-पारके दुर्दान्त नरपतियोंको म्लान और दग्ध बनाया

करती थी, उन दिनो निचली पहाड़ी सम्भ्रान्त नागर-जनोंके वन-यात्रा और सरस्वती-विहारका काम करती थी। देश-देशान्तरसे आए हुए गुणी-जन इस पहाड़की छोटी-छोटी सजाई हुई कन्दराओमे, शिलावेश्मोमे निवास करते थे; शास्त्रार्थ-विचार, काव्य-गोष्ठी, अक्षर-च्युतक, बिन्दुमती, प्रहेलिका आदि मनोविनोदोके साथ-साथ लाव, तित्तिर और मेषके युद्धका आयोजन होता था। मल्ल-विद्या और शस्त्र-प्रतियोगिताका आह्वान होता था. पटह-निनादके साथ कांस्य-कोशी और झर्झर यन्त्रोकी मादक ध्वनिमें व्यायाम-कौशलका प्रदर्शन होता था, और अनेक करणो और अंगहारोके सूक्ष्म अभिनयोसे नागर जनोकी शूरता और सुकुमारताकी परीक्षा होती थी। उन दिनो निचली पहाड़ियोमें आयोजित उत्सवों और शोभा-यात्राओसे दशार्णकी जनता वलदृप्त पौरुषके गौरवसे अभिभूत हो जाती थी। आज अवस्था वदल गई है। निचली पहाड़ीकी प्राकृतिक शोभा आज भी ज्यो-की-त्यो है। दूर तक फैली हुई कदम्ब और कुटजकी पंक्तियॉ वन-पवन और वदरी-गुल्मोकी छोटी-छोटी झाडियॉ और अयत्नवर्धित करवीर, कोविदार और आरग्वध वृक्षोकी उलझी हुई अरण्यानी निचली पहाड़ीकी नयनाभिराम शोभाको आज भी समृद्ध कर रही है। यद्यपि आज प्रशस्त वीथियोपर जगली पौधे उग आए हैं और सरस्वती-विहारके प्रांगणमें वन्य-वदरियोके झाड़ खड़े हो गए हैं, तथापि निचली पहाडीकी कन्दराएँ आज भी जगमगाती रहती हैं। अव वे गुणियोका आश्रय-स्थल न रहकर मनचले नागरिकोके प्रच्छन्न विलासकी अभिसार-भूमियाँ वन गई हैं। उन कन्दराओका भाग्य भी विचित्र है, वे आज चरित्र-भ्रष्ट नागरको और पण्य-रमणियोंके उद्दाम विलासकी

गवाही देते रहते है। यहाँ ये कंदराएँ उच्छृंखल विलासिताके लिए उपयोगमें आनेवाली मादक हालाकी गंध उगलती रहती हैं। यह गंध पण्य-विलासिनियोंके श्रम-जल-सिक्त अंगरागके उत्कट परिमलसे और भी चित्रगंधी हो उठती है। मित्र, मै जब कंदराओं या शिला-वेश्मोंको परिमलोद्गारि (गंधको उगलनेवाला) कहता हूँ, तो कवियोंकी तरह लाक्षणिक भाषाका प्रयोग नहीं करता। इन्हे सचमुच ही वमन करनेवाला मानता हूँ। जिस प्रेममें केवल विलासिता और नग्न कामुकताका ही बोलबाला हो, वह अस्वस्थ मनोदशाकी ही उपज है। उसमें प्रयुक्त होनेवाले समस्त सौगंधिक द्रव्य मानव-चित्तके कलुप विकारोंसे सिक्त होकर विकृत हो जाते हैं। निचली पहाड़ीमें विदिशाकी नग्न कामवासना उच्छृंखल नृत्य करती है। मनुष्यके भीतर विधाताने जिस अद्‌भुत गुणोंवाले यौवनको प्रतिष्ठित किया है, जो चित्तमे अपूर्व औदार्य और आत्म-दानका सामर्थ्य उद्‌बुद्ध करता रहता है, उसे निचली पहाडीकी कंदराओंमें पानीकी तरह बहाया जा रहा है। मेरे सहृदय मित्र, वेत्रवतीका रस-पान करके तुम जब निचली पहाड़ीके ऊपरसे उड़ोगे, तो यह देखकर प्रसन्न होगे कि पवनने तुम्हारे आगमनका सन्देशा पहलेसे ही वहाँ पहुँचा रखा है और कदम्बके फूलोंसे वनस्थली नीचेसे ऊपर तक लहक उठी है। तुम देखोगे कि तुम्हारे सपर्कसे इन उद्गत-केसर कदम्बपुष्पोंके रूपमें वनस्थली ही रोमाचित हो उठी है। आगमिष्यत्पतिका सुन्दरीकी भाँति इस प्रतीक्षा-कातरा वनस्थलीको देखकर निस्सदेह तुम भी रोमाच-कटकित हो उठोगे। परन्तु हवाके झोंकोंके साथ ऊपर उठी हुई परिमलोद्गारकी भभक तुम्हें व्याकुल भी करेगी।

एक तरफ वनस्थलीका निसर्गसुकुमार प्रेम और दूसरी तरफ प्रच्छन्न कामुकोंके कृत्रिम विलाससे तुम्हारी मनोदशा विचित्र हो उठेगी। मै कहता हूँ मित्र, तुम नीचे उतर आना, कदम्बोंकी मूक अभ्यर्थनासे तुम पुलकित होओगे और पण्य विलासिनियोंके परिमलोद्गारकी भभकसे तुम्हारी रक्षा होगी। शिलावेश्मोंके उद्दाम यौवन-विलाससे निचली पहाड़ी सचमुच 'निचली' हो गई है। परन्तु तुम्हें वहाँ निश्छल अनुरागकी शोभा अवश्य देखनेको मिलेगी। वहाँ तुम नीचे आकर कदंब-वनकी छायामे विश्राम कर सकते हो।

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्संपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २५

वहाँ विश्राम करके तुम आगे बढना। एक रात्रिके विश्रामसे तुम बहुत कुछ जान जाओगे। तुम समझ सकोगे कि जो संपत्ति परिश्रमसे नहीं अर्जित की जाती, और जिसके संरक्षणके लिए मनुष्यका रक्त पसीनेमें नही बदलता, वह केवल कुत्सित रुचिको प्रश्रय देती है। सात्विक सौन्दर्य वहाँ है, जहाँ चोटीका पसीना एड़ी तक आता है और नित्य समस्त विकारोको धोता रहता है। पसीना बडा पावक तत्त्व है मित्र, जहाँ इसकी धारा रुद्ध हो जाती है वहाँ कलुष और विकार जमकर खडे हो जाते हैं। विदिशाके प्रच्छन्न विलासियोमें यह पावनकारी तत्त्व नहीं है। वहाँ पुरुष और स्त्री भद्दी काम-वासनाके शिकार हैं। उनके चेहरेमें सात्विक तेज और उल्लसित करनेवाली दीप्ति नहीं रह गई है। निश्चित् रूपसे तुम

रास्ता टेढ़ा अवश्य है; उत्तरकी ओर जानेके लिए तुम चाहो तो सीधे उड़कर जा सकते हो; परन्तु तुम उज्जयिनीको न छोड़ना। रास्ता टेढ़ा है तो क्या हुआ? महान् उद्देश्योंके लिए थोड़ी कठिनाई भी आ जाय, तो हिचकना नहीं चाहिए। यह उज्जयिनी बड़ी महिमामयी नगरी है। पुराकालमें ब्रह्मासे वरदान प्राप्त कर त्रिपुर नामक महाअसुर ऐसा दुर्दान्त हो गया था कि समस्त यज्ञ-याग बंद हो गए थे और देवता लोग त्राहि-त्राहि कर उठे थे। उस समय उज्जयिनीके समीपवर्त्ती महाकाल-वनमें देवता और शास्त्रोंकी रक्षाके लिए भगवान् शंकरने कठोर तपश्चर्यासे देवीको प्रसन्न करके महापाशुपत अस्त्र प्राप्त किया था, जिससे उन्होंने त्रिपुरको तीन खंडोंमें विध्वंस करनेका सामर्थ्य पाया था। इसी जीतके कारण इस पुरीका नाम उज्जयिनी पड़ा। यह वह पुरी है जिसमें देवीने शिवको अपने कृपा-कटाक्षके प्रसादसे शक्तिशाली बनाया था। उज्जयिनी वस्तुत. प्रसन्न-रूपा देवीकी ही छाया है। उत्तर-दिशाको जानेके लिए उज्जयिनी छोते हुए जाना उचित ही है। तुम जिस 'उत्तर' दिशामें प्रस्थान कर रहे हो, उसमें पर्वत-कन्याके रूपमें देवीने शिवका प्रसाद पाना चाहा था।

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि।
गण्डस्वेदापनयनरुजाक्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥ २६ ॥

वहाँ देवीकी तपस्यासे शिव प्रसन्न हुए थे। परन्तु उज्जयिनीकी कहानी बिलकुल उलटी है। शिवने तो देवीकी तपस्यासे प्रसन्न होकर पुष्पधन्वा देवताको भस्म किया था, परन्तु देवीकी प्रसन्नतासे शिवको जो महास्त्र प्राप्त हुआ, उससे उन्होंने त्रैलोक्य-कंटक महा असुरका विनाश किया था। दोनों प्रसादोका अन्तर तुम सहज ही समझ सकते हो। त्रिपुरसुन्दरीका प्रसन्न-दक्षिण मुख कल्याण-कारिणी तेजोराशिको निरन्तर शक्ति-संपन्न किया करता है। विरहाग्निकी आँचसे झुलसा हुआ मेरा हृदय आज व्याकुल-भावसे इस सत्यकी उपलब्धि कर रहा है।

शिवका शक्तिको प्रसन्न करना टेढा मार्ग है। निस्संदेह वह टेढा है। प्रत्येक पिण्डमे शक्ति शिवको और शिव शक्तिको प्रसन्न करनेके लिए तपोनिरत है। मैं मानता हूँ मित्र, कि मेरे अन्तरतरमे जो ज्वाला जल रही है, वह विराट् विश्वमे व्याप्त शिव और शक्तिकी अनादि-अनन्त लीलासे भिन्न नहीं है। वही विराट् लीला कण-कणमे, रूप-रूपमें स्फुरित हो रही है। मनुष्य शरीरमे षट्चक्रोंको भेदकर जो शक्तिका 'उत्जयन' है अर्थात् जो ऊपरकी ओर जीतनेकी अभिलाषासे गमन है, वह भी टेढा है। पिण्डवासिनी देवी 'षट्चक्र-वक्रासना' है। 'उज्जयिनी' उसी उर्ध्व-गामिनी अभिसार-यात्राका प्रतीक है। योगी केवल एकमुख अभिसारकी ही बात जानता है। परन्तु यह खण्ड-सत्य है सखे। उज्जयिनीका इतिहास बताता है कि शिव भी देवीका हृदय जय करनेके लिए उतने ही उत्सुक और उतने ही चचल हैं। जिस प्रकार नीचेसे ऊपरकी ओर अभिसार-यात्राकी चेष्टा चल रही है उसी प्रकार ऊपरसे नीचेकी ओर भी अवतरण हो रहा है। योगी एकहीको देख पाता है, भक्त दोनोको

देखता है। इसी वक्रतामे सहज भाव है। सहज बननेके लिए कठिन आयास करना पडता है मित्र ! सीधी लकीर खींचना सचमुच टेढा काम है। इसीलिए कहता हूँ रास्ता टेढा है, तो होने दो, लेकिन उज्जयिनी जाओ अवश्य। उज्जयिनीके ऊँचे-ऊँचे महलोके कँगूरोंसे टकरानेमें तुम्हें रस मिलेगा। किसी जमानेमे नगरके बडे-बडे रईसोके मकान सुधा-चूर्ण यानी चूनेसे पोते जाते थे, इसीलिए उन्हें 'सौध' कहा जाता था। उन दिनो ये श्वेत भवन दिनमे सूर्यकी किरणोसे चमककर और रातमे चन्द्रिकाकी धवल धारामे स्नान कर दूरसे ही दिखाई देते थे। परन्तु उज्जयिनीमे आजकल सुधा-चूर्णसे पुते हुए भवनोंका कोई महत्त्व नहीं रह गया है। एक-दो हों, तो दूरसे देखने-दिखानेका प्रयास किया जाय। वहाँ तो सैकड़ो भवन हैं, एक-से-एक विशाल ! शाल और अर्जुनके वृक्ष इस उज्जयिनीको घेरकर दूरतक इस प्रकार शोभित हो रहे हैं, जैसे श्वेत चादर ओढे हुए शाल-प्राशु सैनिक खडे हो। तिलक, अशोक, अरिष्ट, पुन्नाग और वकुल वृक्षोकी घनच्छाया-पंक्तियाँ उज्जयिनीके चारो ओर दिनमे भी रात्रिकी शोभा उत्पन्न करती रहती हैं।

उज्जयिनीके ऊपर उड़ोगे, तो तुम्हे सावधान होकर उडना होगा। ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंसे टकरा जानेकी आशका पद-पदपर रहेगी, परन्तु वृक्षोकी चोटी अगर बचा भी जाओ, तो भी उज्जयिनीके उन रंगीन महलोंके कँगूरोसे बच नहीं पाओगे। अब भी लोग उपचार-वश इन गगनचुम्बी रंगीन अट्टालिकाओको 'सौध' ही कहते रहे हैं; परन्तु विदिशाके साधोको देखकर उनकी ऊँचाईके बारेमें गलत धारणा न बना लेना। तुम्हें टकराना तो पडेगा ही। लेकिन बुरा क्या है ? उज्जयिनीके साध भी प्रेमकी मर्यादा समझते हैं। तुम्हारे

जैसे सहृदयोंके लिए उनकी गोद खुली हुई है। वे अपनी विशाल ऊर्ध्वगामी भुजाओंसे तुम्हे चिर-परिचित प्रेमीकी तरह गले लगायेंगे। इसीलिए इन विशाल सौधोंके ऊपरी हिस्सेको उत्संग समझकर तुम प्रीतिपूर्वक विश्राम करना। इनके उत्संगके प्रणयसे तुम विमुख मत हो जाना। फिर एक बडा लाभ भी है। तुम्हारे हृदयमें निरन्तर विराजमान जो विद्युत्प्रिया है, वह इन सौधोंसे टकरानेपर अवश्य चमक उठेगी। उस समय विद्युत्की चमकसे उज्जयिनी नगरीकी सुन्दरियाँ त्रस्त-चकित होकर तुम्हारी ओर चचल कटाक्ष निक्षेप करेंगी। मै कहता हूँ दोस्त, इन चचल कटाक्षोका रस यदि तुम नहीं ले सके, यदि उसमे तुम रम नहीं सके, तो तुम्हारा जनम अकारथ है। तुम सचमुच ही वंचित रह जाओगे। एक क्षणके लिए सोचो तो भला, देवीके कृपा-कटाक्षोसे ससार कितने बडे अनर्थसे निवृत्ति पा सका था। उज्जयिनीकी पौर-ललनाओकी दृष्टिमें त्रिपुर-सुदरीके उसी प्रसन्न कृपा-कटाक्षकी छाया है। विपुल ब्रह्माण्डमें व्याप्त त्रिपुर-सुन्दरीका त्रैलोक्य-मनोज्ञ रूप उज्जयिनीकी पौर-ललनाओंमें नहीं देख सके, तो कहाँ देखोगे? इसीलिए मेरा प्रस्ताव है कि कठिनाईकी चिन्ता किए विना तुम उज्जयिनी अवश्य जाओ, और वहाँके विशाल भवनोके उत्सगमे बैठकर उज्जयिनीकी पौर-ललनाओंके लीला-कटाक्षका रस अवश्य अनुभव करो।

> वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
> सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भरुज्जयिन्याः।
> विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
> लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥ २७ ॥

रास्तेमे तुम्हे क्षीण-धारा निर्विन्ध्या नदी मिलेगी। नदियाँ तुम्हारे वियोगसे क्षीण हो जाती हैं। निर्विन्ध्याकी यह क्षीणता तो विशेष रूपसे उल्लेख्य है। उस वियोगिनीकी दशा यदि तुम चुपचाप जाकर देख सको; तो ठीक-ठीक समझ सकोगे। लेकिन यह होनेका नहीं। तुमसे पहले तुम्हारे स्पर्शसे शीतल बनी वायु तुम्हारे आगमनका संदेशा पहुँचा देगी। दीर्घ प्रतीक्षाके बाद निर्विन्ध्याके भाग जगेगे। उसके क्षीण शरीरकी शोभा प्रसन्नताकी आवेगचटुल तरंगोंके रूपमें बिखर उठेगी। तुम्हारे स्पर्शसे शीतल बनी वायु जब निर्विन्ध्याकी चटुल तरंगोमे और भी चचलता ला देगी, तो तरंगोंके ऊपर विस्रब्ध भावसे खेलते हुए पक्षी सिमटकर एक पक्तिमे आ जायँगे; और अकारण उत्सुकतासे मुखर हो उठेगे। मै कल्पनाकी आँखसे देख रहा हूँ स , निर्विन्ध्याकी लोल तरंगोपर एक ही पंक्तिमें बैठकर उछलती हुई आर क्रेङ्कार ध्वनिसे दिङ्मडलको गुँजाती हुई बलाका-पंक्ति ऐसी मनोहर मालूम होगी, जैसे विरहविधुरा निर्विन्ध्याके कटिदेशपर चॉदीकी करधनी झकृत हो रही हो। इस वीचिक्षोभ-वश स्तनित विहगश्रेणीकी कांचीको धारण करनेवाली निर्विन्ध्याकी शोभा मेरे मन और प्राणको व्याकुल किए हुए है। वायु तुम्हारा संदेश लेकर जिस प्रकार निर्विन्ध्याको तरंग विक्षोभमे चचल कर देगी, ठीक उसी प्रकार मेरा संदेश लेकर जब तुम मेरी प्रियाके पास पहुँचोगे, तो उसके हृदयमे भी इसी प्रकार आवेग-चटुल तरंगे हिल्लोलित हो उठेगी। मै कल्पनाकी ऑखोसे प्रत्यक्ष देख रहा हूँ कि तुम्हारे आगमनके संवादसे निर्विन्ध्याकी गति स्खलित होकर नयनाभिराम हो उठी है। उसके पैर धरतीपर नहीं पड रहे हैं। तुम मौजी जीव हो, बुरा न मानना; विरहीकी

आँखोंसे कभी तुमने उत्कंठा-कातर प्रियाका स्खलित-सुभग गमन देखा नहीं । निर्विन्ध्याकी स्खलित गतिका अनुमान करके मेरा हृदय कातर हो उठा है । प्रेम जब उद्वेल हो उठता है, जब वह हृदयमे अँटाए नहीं अँटता; तभी इस प्रकारकी स्खलित गति दिखाई देती है । मेरे मित्र, तुम उत्कंठाके इस दुर्वार आवेगकी छटा छकके देखना । निर्विन्ध्याकी तरंगें तुम्हे विरह-कातरा वधूकी नाभिके समान गभीर मनोहर दिखाई देंगी । मेरा हृदय कहता है कि यह आवर्त-माला तुम्हे आकृष्ट करनेका संकेत है । परम लज्जावती वधूके मुखसे आमन्त्रणकी पुकार सुननेकी आशा न रखना । क्षण-भरके लिए तुम झुककर उस लज्जावतीकी अभ्यर्थना अवश्य कर लेना । नारी—तत्रापि प्रेम-विह्वला नारी—महामायाकी निषेधरूपा प्रकृतिका प्रतिनिधित्व करती है । वह अपनेको निश्शेष भावसे लुटा देनेमें चरितार्थता अनुभव करती है । उसके विभ्रमोमें ही प्रणयकी कातर प्रार्थना छिपी रहती है । निर्विन्ध्यासे अधिक विभ्रमवती नायिका तुम्हें कहाँ मिलेगी ? इसी-लिए मेरा अनुरोध है कि एक बार उसकी प्रणय-कातर प्रार्थनाको अवश्य स्वीकार करना । निर्विन्ध्या सचमुच विरहिणी नायिका है । विरहिणीकी एक वेणीकी भाँति उसकी क्षीण-धारा बहुत ही पतली हो गई होगी । किनारेके वृक्षोंसे गिरे हुए जीर्ण पत्तोसे ढककर वह उसी प्रकार पीली पड गई होगी, जिस प्रकार मानवी विरहिणी विरह-व्यथासे पीली पड जाती है । हे सुभग, वह इस विरहावस्थाके द्वारा तुम्हारे सौभाग्यकी सूचना देती होगी । कुछ ऐसा उपाय करना कि इस बेचारीका विरह-दौर्बल्य दूर होवे ।

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ २८ ॥

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ २९ ॥

५

इसके बाद अवन्तिका। निर्विन्ध्या नदीको सुख देकर तुम अवन्ति-जनपदमे उपस्थित होगे। उस अवन्ति देशमें उपस्थित होगे, जिसके गाँवके बडे-बूढे आज भी उदयन और वासवदत्ताकी कहानियाँ सुनाया करते हैं। इस ललित उपाख्यानमें शौर्य, प्रीति और प्रेमोन्मादका अद्भुत नाटकोचित उतार-चढाव है। वासवदत्ता और उदयनके प्रथम रोषोत्क्षिप्त चित्तका संघर्ष और उसकी पृष्ठ-भूमिमे हृदयको द्रवित कर देनेवाली स्निग्ध चितवनोका आदान-प्रदान ग्राम-तरुणोके चित्तमें कुशल कविद्वारा निबद्ध नाटकके परस्पर विरुद्ध जानेवाले संवेगोके संघर्षसे पैदा हुए झटकेकी गुदगुदी पैदा कर देता है। इस अवन्ति-देशमे कहा जाता है कि देवता, तीर्थ, औषध और प्राणी कल्पान्त कालमें सुरक्षित रहते हैं। समस्त जगत् जब महाप्रलयका शिकार हो जाता है, तो भी

भविष्यत् कल्पके लिए बीजभूत सामग्री इसमें सुरक्षित रह जाती है। यहाँ समस्त तत्त्व-ग्रामको विशेष भावसे कवलित करके शयन करनेवाली महामायाकी श्वासप्रक्रिया नित्य जाग्रत रहती है। इसी लिए अवन्तिदेश 'कवली-कृत-निःशेषतत्त्व-ग्रामस्वरूपिणी' महामायाकी मानो नासिका है। इस देशमे आकर तुम विशाला नामक उज्जयिनी पुरीको देखोगे। विशाला उज्जयिनीका दूसरा नाम है। यह नगरी सब प्रकारसे विशाल है। शोभा, सम्पत्ति और शालीनता यहाँ विग्रहवती होकर वास करती है, इसीलिए मै इसे 'श्रीविशाला विशाला' कहता हूँ। मेरा ऐसा विचार है कि स्वर्गमे अपने पुण्योका फल भोगनेवाले कृतीजन पुण्य समाप्त होनेके पहले ही स्वर्गके कान्तिमान् खण्डको लेकर यहाँ आ बसे है। इसी लिए मैंने तुम्हें पहले ही बतलाया है कि उज्जयिनी भोगक्षेत्र है. काशीकी भाँति वह कर्मक्षेत्र नहीं है। दीर्घकालके पुण्योका फल भोगनेके लिए लोग यहाँ आ जाते है।

प्राप्यावन्तीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धा-
न्पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम ।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम ॥ ३० ॥

एक क्षणके लिए यक्षका चेहरा खिल उठा। अलका और उज्जयिनी दोनोंमें कितना साम्य है! दोनो ही परम पुण्योके भोगके लिए बनी हैं; फिर भी अलका देव-योनिके लोगोंके लिए है और उज्जयिनी मानव-योनिके। अलका भाग्यो-

पार्जित समृद्धिका निवास-स्थान है और उज्जयिनी बाहु-बलार्जित लक्ष्मीकी क्रीडा-भूमि। देव-योनिकी बस्ती अलका पुण्यकर्मा व्यक्तियोकी सिद्धि है, तो उज्जयिनी यतमान मनुष्योंकी साधना-भूमि है। मेघ यदि उज्जयिनी होते हुए जायगा, तो अलकाका सक्षिप्त रूप देख लेगा, और उन समस्त विलासोसे परिचित हो जायगा, जो पुण्यपुरके भोक्ताओको अनायास प्राप्त हो जाते हैं। उज्जयिनीमें शिप्राकी लोल तरंगोसे सिक्त प्रत्यूपकालीन वायु क्लमविनोदनका सामर्थ्य भर देती है, जिस प्रकार अलकामे मन्दाकिनीके निर्झर-सीकरोसे शीतल बनी प्राभातिक वायु। एक क्षणके लिए यक्षके शरीरमें पुलक-कम्पका अनुभव हुआ। उसे वे सौभाग्यवती रात्रियाँ स्मरण हो आई, जिनमें प्रियासहचर होकर उसने प्रणय-सुखका अनुभव किया था। उसे याद आया कि सारी रातके जागरखेदको निर्झर-सीकरोसे सिक्त प्राभातिक वायु किस प्रकार अपनोदन कर दिया करती थी, और अशिथिल परिरंभ-क्रियाद्वारा आयोजित संवाहन-सुखको किस प्रकार आनन्दसमुज्जवल बना दिया करती थी। उसने कल्पनाकी दृष्टिसे शिप्राकी तरगोंसे धौत मन्द-मन्द-संचारी प्रत्यूपकालिक प्राभातिक वायुमें यह क्लान्तिहर भाव देखा। उसने कल्पनाकी ऑखोंसे देखा कि प्रभात कालमें शिप्राके तटोपर सारसगण उन्मत्त कूजनसे तट-प्रदेशको मुखरित किए हुए है और प्राभातिक वायु उनकी इस आनंद-ध्वनिको उज्जयिनीके सौध वातायनोके मार्गसे घसीटती हुई नगर जनोके विश्रामकक्ष तक पहुँचा रही है। यक्षने उन्मत्त भावसे अनुभव किया कि यह वायुका झोका, जो सारसोंके आनन्दकूजनको वहन करके रसिक दम्पतियोंके विश्राम-कक्ष तक पहुँचा रहा है, खुशामदी प्रियतमसे किसी अंशमें

कम नहीं है। आखिर चाटुकारितामें लीन प्रियतम भी तो अर्थहीन बातोसे ही प्रियाकी अंग-ग्लानिको दूर करना चाहता है। दोनोमे अंतर ही क्या है? फिर प्रातःकालीन विकसित कमलोकी सुगंधिसे यह वायु उसी प्रकार भिदी होती रहती होगी, जिस प्रकार प्रियतमका शरीर आश्लेषलग्न विभिन्न अंगरागोंसे गंधमय हुआ रहता है। क्षण-भरमे यक्षकी ऑखोके सामने पुरानी अनुभूतियाँ साकार हो गईं। वायु तो कोई जीवन्त प्राणी नहीं है। उसमें भिदी हुई सुगन्ध और बँधी हुई आनन्द-ध्वनिमें प्रियतमकी प्रार्थना-चाटुकारिताका आरोप कैसे किया जा सकता है? मनुष्यके अपने ही चित्तमें जो राग है, जो उत्कण्ठा है, उसीको वह चराचरमें व्याप्त करके देखता है। कहाँ प्रभातिक वायु और कहाँ प्रियाका चित्त-विनोदन करनेवाला प्रेमी! फिर भी यक्षने सारसोंकी उन्मद ध्वनिको वहन करनेवाले और प्रत्यूषकालीन विकसित कमलोकी सुगंधिको ढोनेवाले शिप्रा-वातमे प्रियतमकी ललकका आभास पाया। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि बाह्य-जगत्को मनुष्य जैसा देखना चाहता है, वह वैसा ही देखता है। हमारे सामने जो-कुछ व्यक्त है, वह हमारी लालसाओंके रंगमें रंगा हुआ है। क्या यह लालसा निर्मूल है? क्या इसके द्वारा अग-जगमें व्याप्त विराट् एककी अनुभूतिका आभास नहीं मिलता? मनुष्यके चित्तमे निश्चय ही प्रच्छन्न रूपसे व्याप्त विराट् चैतन्यकी लहरें लालसाके रूपमे तरंगित होती रहती है। यक्षके हृदयमे जो अभिलाषा-चञ्चल वृत्तियाँ है, उन्होंने ही शिप्रा-वातमें उस प्रार्थना-चाटुकार प्रियतमका आरोप किया है, जो वह स्वयं है या होना चाहता है। कहते हैं, जिसमें व्याप्त काल देवताकी लिखा ही

व्यक्तिके चित्तमे इस प्रकारकी सर्जनात्मक लालसाओके रूपमे अभिव्यक्त होती रहती है। किन्तु यक्ष क्या इसे जान सका ? समझता, तो क्या वह उन्मथित चित्तकी उस लालसाके बंधनसे छुटकारा न पा जाता, जिसने समस्त जगत्को अपने रंगमें रंगकर रंगीन बना डाला है ? धन्य हो महाकाल ! तुमने अपनी कुहकमयी शक्तिके द्वारा सारे जगत्के मूल सत्यपर सुवर्णमय आवरण डाल रखा है। अगर यह हिरण्मय पात्रका आवरण न होता, तो कदाचित् मनुष्यका चित्त रेगिस्तानके समान नीरस हो जाता, उसमे अभिलाष-चंचल भाव कभी दिखलाई ही नहीं देते और कदाचित् वह रूपके माध्यमसे तुम्हे पकड़ नहीं पाता। नग्न सत्य शायद दुर्वह बोझ ही होता। अच्छा ही है जो मनुष्यको अनावृत्त नग्न सत्यके वास्तव रूपका पता नहीं है। होता तो अपने चित्तके विक्रियाओंके ताने-बानेसे वह सत्य इतना रागरक्त करके न देख पाता। कहाँ होती उस समय महामायाके त्रिजगन्मनोज्ञ रूपकी उल्लास-मुखर कल्पना ? अच्छा ही हुआ जो विधाताने सत्यके मुखको हिरण्मय पात्रसे ढँक दिया है।

यक्षने भाव-विगलित भाषामे अपने दिलकी बात मेघसे कह दी। मित्रसे क्या दुराव ? उसने शिप्रा-वातके बहाने मदाकिनीमे निर्झर-स्नात वायुका ही स्मरण किया और उस वायुके बहाने अपने ही चित्तकी प्रकृति उतारकर रख दी। हाय-हाय, प्रार्थना-चाटुकार शिप्रा-वातकी कल्पना कितनी हृदय-वेधक थी !

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।

यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ३१ ।

यक्षने कहा, देखो मित्र ! उज्जयिनीकी ललनाएँ अपने नितान्त 'घन-नीलविकुञ्चिताग्र' घुँघराली लटोंमें सुगंधि लानेका प्रयत्न बराबर करती रहती है। इस देशमें हेमन्त और शिशिरमें दीर्घकाल तक सुगंधित धूपसे धूपित करके केशोमें स्थायी रूपसे सुगंधि उत्पन्न करनेकी जो भोंडी प्रथा चल गई है, वह उज्जयिनीकी सुरुचि-सम्पन्न तरुणियोको मान्य नहीं है। वे हल्की सुगंधिवाले सौगंधिक द्रव्योसे प्रत्येक ऋतुमें केश-संस्कार कर लिया करती है। यद्यपि वर्षा-कालमें आमोद-मदिर पुष्प-गुच्छ और नयनाभिराम मालती-दाम केशोको सुगंधि देनेके लिए पर्याप्त होते हैं; तथापि आषाढके इस प्रथम आविर्भाव-कालमें स्वभावचतुर सुन्दरियाँ तुम्हारे अनिश्चित् आगमनकी प्रत्याशामे केश-संस्कारको संशयापन्न नहीं करना चाहतीं। उज्जयिनीके सौधोंमे केश-संस्कारके लिए जलाए गए हल्की सुगंधिवाले धूप-धूमकी धूम अवश्य मची होगी। शिप्राके तट-प्रान्तको घेरकर जो विशाल भवन खडे हुए है, उनके अवरोधगृह जालीदार पत्थरोंके गवाक्षोसे सुशोभित हैं। इन्हीं प्रासाद-जालोंमे 'जल-वेणि-रम्या' शिप्राकी शोभा नित्य पुर-सुंदरियोंकी आँखोंमें अभिलाष-चंचल भाव उत्पन्न करती है। जब तुम शिप्राके ऊपरसे उड़ते हुए पुरीमें प्रवेश करोगे, तो सबसे पहले गवाक्ष-जालोंसे निकलती हुई धूप-धूमकी रेखा तुम्हारा स्वागत करेगी। निःसन्देह इससे तुम्हारा शरीर पुष्ट होगा। बड़भागी हो मित्र, जो पुर-सुन्दरियोंके विश्रब्ध क्षणोंमें आयोजित धूप-धूमका उद्वृत्त अंश पा सकोगे !

उस धूमके साथ न जाने कितनी आकाक्षाएँ और कितनी लालसाएँ गवाक्ष-जालोके मार्गसे निकल रही होंगी। उसका स्पर्श पाकर तुममें भी नवीन उल्लासका सचार होगा। फिर तुम्हारे मित्र और प्रेमिक मयूर, जो इन विराट् भवनोके क्रीड़ा-पर्वतोपर विचरण कर रहे होंगे और जिनके लिए सुवर्णमयी वास-यष्टिका निर्माण किया गया होगा, तुम्हें देखकर नाच उठेगे। नगरीमें प्रवेश करते समय यही नृत्य तुम्हारे लिए प्रेमोपहारका काम करेगा। उज्जयिनीके प्रासादोमे एक भी ऐसा नहीं है, जिसमे भवन-दीर्घिका, वृक्ष-वाटिका और क्रीड़ा-पर्वत न हो और एक भी ऐसी वृक्ष-वाटिका नहीं है, जिसमे चम्पक, सिन्धुवार, वकुल, पाटल, पुन्नाग और सहकारके घनच्छाय वृक्ष न हो और जिसके अतःपुरसे सटी हुई पुष्प-वाटिकामें मल्लिका, जाती, नव-मालिका, कुरंटक, कुब्जक और दमनक लताओंकी शोभा न दिखाई देती हो। उज्जयिनीके बड़े बडे भवन हर्म्य कहलाते हैं। एक ज़माना था, जब नगरीके मध्य–भागमे बसनेवाले रईस छोटे–छोटे वन्द कक्षवाले महलोका निर्माण करते थे। उनका प्रधान उद्देश्य अर्जित सपत्तिकी सुरक्षा होता था। उनके घरोमे सूर्यकी किरणोका प्रवेश भी नहीं हो पाता था। इसीलिए वे मकानोको ऊँचा बनाते थे, ताकि ऊँचाईपर बने हुए कक्षोंमे कुछ घर्म या घाम आ जाय। जो जितना ही धनी होता था, वह उतना ही ऊँचा कक्ष बनवा लेता था। जो कम धनी होता था, उसका मकान सूर्यकी किरणोंसे वंचित ही रह जाता था। यही कारण है कि उन ऊँचे मकानोको 'घर्म्य' कहा करते थे, अर्थात् जिनमें सूर्यकी रोशनी पहुँच जाया करती थी। जनतामें यही घर्म्य शब्द घिसकर 'हर्म्य' बन गया। किन्तु उज्जयिनीके

नागरिक जनोमे बद कक्षवाले भवनोका, अब विशेष सम्मान नहीं रह गया है। उज्जयिनीके वीरोका बाहु-बल अब निर्विवाद रूपमें 'गोप्ता' अर्थात् रक्षकके रूपमे स्वीकार कर लिया गया है। महाप्रतापी गुप्त नरपतियोने जनताके भीतर विश्वासका संचार किया हैं, इसीलिए शिप्राको घेरकर दूर-दूर तक विशाल प्रासाद बने हुए है, जो केवल सुन्दरियोंकी घुँघराली लटोको सुगंधित करनेवाले धूप-धूमसे ही नहीं, बल्कि उनके सुकुमार कर-पल्लवोसे ललित पुष्प-लताओंसे भी सुवासित रहते है। मै इन विशाल हर्म्योंको 'कुसुम-सुरभि' कहना अधिक पसंद करूँगा। ऐसी कोई भी ऋतु नहीं है, जिसमें कोई न कोई पुष्प इन पुष्पोद्यानोंमे न खिलते रहते हो। उनकी गन्धसे ये विशाल भवन निरन्तर सुरभित बने रहते हैं। इसीलिए कहता हूँ मित्र, कि धूप-धूमसे ज़रा मोटे-ताजे होकर और अपने मयूर-जैसे प्रिय मित्रोंके नृत्योपहारसे सुप्रसन्न होकर तुम इन कुसुम-सुरभित प्रासादोंमें रास्तेकी थकान अवश्य दूर कर लेना। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि इन भवनोंमें तुम्हें ललित वनिताओंके चरणोके महावरसे चिह्नित पदाकोंमे सर्वत्र शोभा और शालीनताके दर्शन होंगे। केशके धूप-धूम और महावर-खचित चरणोके नयनहारी चिह्न देखकर तुम शिखासे नख तककी शोभाका अनुमान कर सकोगे। इतना भी कम नहीं है। जो सचमुच सौन्दर्यका आश्रयस्थल है, उसका स्पर्श भी हृदयको विशाल और उन्नत बनानेवाला होता है। इसीलिए ललित वनिताओके पद-रागांकित हर्म्योंमे तुम्हें सच्ची शान्ति प्राप्त होगी।

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः।

हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथा
लक्ष्मीं पश्यंल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३२ ॥

लेकिन मार्गकी क्लान्ति दूर करनेके बहाने कही अटक न जाना। तुम्हें पहले ही बताया है कि उज्जयिनी महाकाल देवताकी लीलाभूमि है, यह त्रिभुवन-गुरु भगवान् चण्डीश्वर महादेवकी तपस्या-भूमि है। 'चण्डीश्वर' नाम सार्थक है, मित्र! सहज कोपन-स्वभावा देवी महादेवीकी तपस्यासे यहाँ प्रसन्न हुई थीं। दीर्घकाल तक उनकी बंकिम भृकुटियोमें ऋजुता नही आई, कुंचित ललाट-पटपर सहज भाव नही आया और उत्क्षिप्त हृदयमे अनुकूल भावोका संचार नही हुआ। यह जो वक्ररूपा चंडिका देवी हैं, वे समष्टिमें व्याप्त स्पन्दहीन शिवकी क्रिया-शक्तिके प्रथम उन्मेषका रूप है। व्यष्टिमें भी जब भगवती परावाक् स्पन्दहीन परम शिवकी क्रियाके रूपमे प्रथम बार स्पन्दित होती है, तो 'पश्यन्ती' वाणीके रूपमे 'अंकुशरूपा' होकर व्यक्त होती हैं। यही पराशक्तिका वक्रा, वामा या चण्डी-रूप है। पिण्डमे पश्यन्ती वाणीके रूपमें व्यक्त यह सृष्टिके रूपमे व्यक्त होती है। जब यह मध्यमा वाणीके रूपमें ऋजुता प्राप्त करती हैं, तो 'ऋजुरूपधरा दण्डरूपा' भगवतीके रूपमे अभिव्यक्त होती है। निखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त पराशक्ति जब वक्ररूपा 'वामा' शक्तिके रूपमे उल्लासित होती है, तो वह वेग बड़ा प्रचण्ड होता है। उसी स्पन्दनके उद्दाम वेगसे अनन्त आकाशमें व्याप्त शून्य सिहर उठता है और बार-बार प्रचण्ड आघात खाकर वस्तुपुञ्ज-रूपी फेन रूपमे सिमटने लगता है। जिस प्रकार स्वर्गलोकसे सहस्रधार होकर गिरती हुई जाह्नवीकी धाराको

महाकाल अपने जटाजूटमें धारण करके रिझाते हैं, उसी प्रकार इस चण्डवेगा वामा-शक्तिको शिव अपने जटा-जालमे उलझाना चाहते हैं। मित्र, जब-जब मै अपनी सीमित दृष्टिसे पराशक्तिके उस चण्ड वेगकी कल्पना करता हूँ, तब तब भय और त्राससे मेरा चित्त विदीर्ण हो उठता है, सारे शरीरमे कम्प आ जाता है। कौन है, जो इस वक्ररूपा महाचंडिकाको प्रसन्न कर सकता है? कौन है, जो उनकी कुंचित भृकुटियोमे सहज लीलाका उद्रेक करा सकता है? कौन है, जो उनके रोप-काषायित नयनकोशोंमे व्रीडाका भाव संचारित कर सकता है? एकमात्र महाकाल देवता! मुझे देवीके 'पश्यन्ती' रूपमे और सहस्रधार जाह्नवीके 'अवपतन्ती' रूपमे अद्भुत साम्य दिखता है। समस्त लोकके कल्याणके लिए महाकालने देवीको प्रसन्न करनेका व्रत लिया और चण्डीश्वर होनेका गौरव प्राप्त किया। भगवान् चण्डीश्वर निरन्तर संसार-सागरके मन्थन और आलोड़नसे स्वत: आविर्भूत विपका पान करते चले आ रहे हैं। इसीलिए वे त्रिभुवन-गुरु है। महाकालके सिवा दूसरा कौन है, जो संसार-सागरसे निरन्तर उद्भूत होनेवाले विषको पीता रहे और प्रजाको कल्याण-मार्गकी ओर अग्रसर करता रहे? एक ओर जहॉ वे त्रिभुवन-गुरु है. समस्त जगत्को अपने शान्तिमय क्रोडमे आश्रय दे रहे है, वहॉ दूसरी ओर वे चण्डीश्वर भी हैं। पराशक्तिके उद्दाम वेगको उन्होने ही वशमें कर रखा है। मेरे मित्र! महादेवके गण जब तुम्हे देखेगे, तो यह समझकर कि उनके स्वामीके नीले कंठकी तरह तुम्हारा रंग है, तुम्हारा बड़ा आदर करेंगे। मेरा अनुमान है कि भगवान् महाकालके दर्शन तुम्हे अनायास प्राप्त हो जायेंगे। उज्जियिनीके हर्म्य-शिखरोपर थोड़ी देरके लिए

विश्राम करके तुरन्त महाकाल देवताके दर्शनके लिए चल देना। 'पूज्य-पूजा-व्यतिक्रम' यो ही बड़ा दोष है, परन्तु उज्जयिनीमें तो वह मूर्खता भी है। जिसने त्रिभुवन-गुरुके चडीश्वर-रूपको नहीं समझा, वह पराशक्तिके पिंड रूपमे अभिव्यक्त पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी रूपको भी नही समझ सकता। फिर मित्र उस व्यक्तिसे तुम क्या आशा रखते हो कि वह हृदय-देशके अतल गम्भीर्यसे निकली हुई प्रेमवाणीको समझ सकेगा? यह जो पिण्ड-रूपमे 'महाकाल' प्रिय और प्रियाके रूपमे द्विधाविभक्त होकर विद्यमान है, उसके उपरले स्तरके आकर्षणकी गहराईमे कैसे जा सकेगा? वह कैसे समझेगा कि विरहकी यह जो कातर व्याकुलता है और मिलनकी यह जो दुर्दान्त आकाक्षा है, वह महाकालकी पराशक्तिका ही उल्लास है? कितनी गहराईसे यह मिलनाकांक्षाकी कातर वाणी ऊपर उठ-उठकर स्थूल वर्णमातृकाओमें अभिव्यक्त हो रही है! कैसे उ े समझाओगे मित्र, कि वाक् और अर्थका जो सम्पृक्त रूप चित्तमे उठ-उठकर विलीन हो रहा है, वह वर्णमातृकाके रूपमें वामाशक्तिकी अभिव्यक्ति मात्र है? स्थूल जगत्मे तो वह हिरण्मय रूपके आवरणसे इतना आच्छादित है कि उसे उसी स्तरपर पकड़ना असम्भव कार्य है। मेरे हृदयमें इस समय जो उत्कण्ठाकी लहरें हिल्लो-लित हो रही हैं, वे क्या निखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त महाकालके 'चण्डीप्रसादन-रूपा' उत्कंठासे पृथक् और विच्छिन्न हैं? तुम्हारे हृदयमें मेरे दैन्यके प्रति जो सहानुभूति है, और मेरी प्रियाके प्रति इस कातर वाणीको पहुँचा देनेकी जो उत्सुकता है, वह भी उस विराट् लीलासे पृथक् और विच्छिन्न नहीं है। इसीलिए कहता हूँ कि

उज्जयिनी जाकर तुम त्रिभुवन-गुरुके चण्डीश्वर-रूपके चरणोमें अवश्य अपना प्रणिपात निवेदन करना। तुम्हे उनके गरल-मलिन कण्ठका सावर्ण्य प्राप्त है, इसीलिए तुम मेरी बातको आसानीसे समझ सकते हो। तुम चडीश्वरके धाममे जानेके उपयुक्त अधिकारी हो। चडीश्वरका धाम, जिसके उद्यान जल-क्रीड़ामे निरत युवतियोके स्नानसे धुले हुए अग-रागो और प्रफुल्ल कमलपुष्पोके पराग-केसरसे तथा गंधवती नदीके तुषारसे सिक्त पवनके द्वारा निरन्तर कपित हो रहे हैं। महामायाकी सबसे सुकुमार और शालीन शोभा तरुणियोके रूपमे अभिव्यक्त होती है और उत्फुल्ल कमलोमें लीलायित हुआ करती है। व्यक्त जगत्में महामायाके त्रैलोक्य-मनोहर रूपके ये सर्वाधिक सुकुमार अधिष्ठान है। इनके स्पर्शसे वायुमे मस्ती आती है और मनोज्ञ संचार अभिव्यक्त होता है। इस वायुके स्पर्शसे तुम अन्तरतरकी गहराईमे विराजमान परा-शक्तिका अस्पष्ट आभास अनुभव कर सकोगे। चण्डीश्वरके इस पवित्र धाममें उपस्थित होना न भूलना। जो भगवान् महाकालके इस रूपकी पूजा नहीं कर सकता, वह चारुता और स्निग्धताके हृदयोन्माथी गुणोका परिचय भी नहीं प्राप्त कर सकता। व्यक्त जगत्के उपरले स्तरको खरोच-खरोच कर रस पानेकी आशा करनेवाले कवि वातुल है। तुम गहराईमें जाकर पराशक्तिके उन्मद विलासकी आभा देखनेका प्रयत्न अवश्य करना।

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्य यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः॥ ३३॥

मेरे प्यारे जलधर मित्र! यद्यपि मेरा हृदय संगमोत्कण्ठासे कातर है और मै प्राकृत जनके समान प्रलाप कर रहा हूँ, तथापि मुझे रंचमात्र भी सन्देह नहीं है कि मेरे हृदयमें जो उत्कण्ठा और औत्सुक्य है, वह अकारण नहीं है। कहीं कोई बड़ी बात होनी चाहिए, जो मेरे शरीर और मनको मथे डालती है। मैं पागल नहीं हो गया हूँ। पागल उसे कहते है, जिसके हृदयके अभिलाष और उसे व्यक्त करनेवाली उपरले स्तरकी वैखरी वाणीमें सामञ्जस्यका पता नहीं रहता। मैं ज्ञानी भी नहीं हूँ, क्योंकि ज्ञानी उसे कहते हैं, जो सत्यके अनावृत रूपको पकड लेनेका दावा करता है। मैं भ्रान्त हूँ, व्याकुल हूँ, कातर हूँ। मुझे सत्यके अनावृत रूपका पता नहीं है, परन्तु उसके हिरण्मय आवरण और अन्तरतरके अनभिषिक्त जीवन देवताका सामञ्जस्य मुझे मालूम है। भगवान्‌की ओरसे तुम्हे जो नयन-सुभग रूप और श्रवण-सुभग गर्जन प्राप्त हुआ, वह भी सत्यका हिरण्मय आवरण ही है। मुझे रह-रहकर ऐसा लगता है कि सत्यने अपनेको सुन्दर रूपमें अभिव्यक्त करनेका जो प्रयास किया है, वही उसका हिरण्मय आवरण है। सत्यका जो यह प्रयास है, उसीको शास्त्रकारोंने इच्छा-शक्ति, ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्तिका नाम दिया है। इन्हीं तीनों क्रियाओसे जगत् त्रिपुटीकृत है। इसी त्रिपुटीकृत जगत्‌की अभिव्यक्तिकी जो प्रक्रिया है, वह देवीका 'त्रिपुरारूप' है। उसी रूपमें समझनेसे मनुष्यका सीमित ज्ञान भी सार्थक और चरितार्थ होता है। मैं कहता हूँ मित्र, महाकालके मन्दिरमें जाकर तुम अपने इस श्यामल-मनोज्ञ रूप आर मन्द-मन्द श्रुतिसुखकर गर्जनको चरितार्थ बना सकते हो। यदि तुम इस रूप और इस ध्वनिका यथार्थ फल पाना चाहते हो, तो महाकालके

मन्दिरमें उसका अवसर ढूँढ़ लेना। किसी समय भी पहुँचना, किन्तु सूर्यास्त तक रुक अवश्य जाना। जब तक सूर्य अच्छी तरह आँखोंसे ओझल न हो जाय, तब तक प्रतीक्षा करना। जब सूर्य-देवता अस्ताचलमें विलीन हो जायँगे और सन्ध्याका झुटपुटा प्रकाश भी धीरे-धीरे म्लान हो जायगा, उसी समय महाकालके मन्दिरमे आरतीका नगारा बज उठेगा। उस समय आरात्रिक प्रदीपोंको लेकर पूजा-परायण भक्त नृत्य-निमग्न हो उठेंगे और सन्ध्याका बलि-पटह गम्भीर निर्घोषके साथ ताल देता रहेगा। उस नगारेकी आनन्दध्वनिके साथ तुम भी अपने श्रुति-मधुर गर्जनकी ध्वनि मिला देना और इस प्रकार तुम्हे मधुर गर्जनका जो प्रसाद मिला है, उसका पूर्ण फल प्राप्त करना। मनुष्य-के सभी शब्द, सभी स्पर्श और सभी रूप महाकाल देवताके चरणोंमें निछावर होकर ही धन्य होते हैं। मुझे कोई संदेह नहीं मित्र, कि उस संध्या-कालीन बलि-पटहके गंभीर निनादके साथ जब तुम्हारे मन्द निर्घोपका ताल मिलेगा, तभी वह सार्थक और चरितार्थ होगा। उस समय क्षण-भरके लिए जो आनंद प्राप्त होगा, वही तुम्हारे जीवनकी चरम सफलता होगी। मनुष्य अपनी सीमाको यदि क्षण-भरके लिए भी असीमके तालसे ताल मिलानेमे चरितार्थ कर सके, तो उसका जन्म सार्थक हो जाता है। असीमकी आराधनामे लगाया हुआ एक क्षण भी सीमाको चरितार्थ कर देता है, अविकल फलका अधिकारी बना देता है।

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः।

कुर्वन्संध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम् ॥३४॥

संध्या-कालीन आरात्रिकके नगारेकी मृदु मन्द ध्वनिके बाद तुम्हे मन्दिरकी नर्त्तकियोके मनोहर नृत्य देखनेको मिलेगे। इन नर्त्तकियोके ताल-तालपर किए हुए चरण-निक्षेपसे कटि-भागपर झूलती हुई रशना क्वणित हो उठेगी। लीलापूर्वक वीजित रत्नच्छायासे खचित चामरदण्ड मनोहर भावसे हिल उठेंगे और उनके सुकुमार हाथ इन लीलावधूत रत्नखचित चामरदण्डोके भारसे क्लान्त हो उठेंगे। नर्त्तकियोके इस नृत्यको 'दैशिक' नृत्य कहते हैं। इसमे वे हाथमें खड्ग, कन्दुक, वस्त्र, दण्ड, चामर, माला और वीणा धारण करके नृत्य करती है। किसी जमानेमें अवन्तिके इर्द-गिर्द वन्य जातियोमे तरुणियोके शस्त्र लेकर उद्दाम नृत्य करनेकी प्रथा थी। अब भी गहन विन्ध्याटवीमे बसनेवाली शबर युवतियाँ इस प्रकारका 'दैशिक' नृत्य किया करती हैं। जब तुम विंध्याटवीके शबराध्युषित क्षेत्रोके ऊपरसे उडोगे, तो कभी न कभी इस उद्दाम नृत्यके देखनेका अवसर भी पा सकोगे। अब उज्जयिनीकी संभ्रांत गणिकाओने उस उत्कट नृत्यको तालानुग बनाकर ललित मनोहर रूपमें ढाल दिया है। नाम उसका अब भी 'दैशिक' ही चल रहा है। इस नृत्यमे खड्ग और चामर आदि उपकरण केवल लीला-विलासके साधन-मात्र रह गए हैं। पटहनिनादकी पृष्ठभूमिमें चामर-धारिणी देव-दासियोका नृत्य बहुत ही अभिराम हो जाता है। वीणा और वेणु, कलकांस्य और कोशी आदि वाद्योकी ध्वनिके साथ क्वणित किंकिणीका और रणन्-नूपुरा नर्त्तकियोंका ललित-मनोहर

नृत्य मादक वातावरण उत्पन्न करता है और बीच-बीचमें पुजारियोका हुङ्कार और डमरू-निनाद उस मादक वातावरणको बरबस खींचकर महाकालके चरणोमें निक्षिप्त कर देता है। उज्जयिनीके प्रतापशाली नरपतियोंने भक्तिपूर्वक महाकालकी सेवाके लिए जो रत्नखचित सौवर्ण चामरदण्ड अर्पित किए हैं, वे आग्न्त्रिक प्रदीपोसे उद्भासित होकर अपूर्व शोभा उत्पन्न करते है। परन्तु श्रद्धा और भक्तिके आवेशमे दिए हुए महार्घ रत्न और सुवर्ण दंड इतने भारी हो गए हैं कि महाकाल मंदिरकी सुकुमार नर्तकियोंकी सुकुमार कलाइयॉ देरतक उस भारको सहन नहीं कर पाती। शतावरी लता जिस प्रकार पूर्वी वायुके झकोरोंसे बार-बार विस्रस्त होकर क्लान्त-जैसी दिखने लगती है, उसी प्रकार सरस नृत्य इन सुकुमार ललनाओको स्रस्तविथुर बना देता है। कहॉ मदन देवताके पुष्प-धनुपकी भॉति सुकुमार ललनाऍ और कहॉ गुरुभार चामरदण्ड! मित्र, इन श्रान्त-क्लान्त क्रीडा-पुत्तलिकाओ-जैसी सुकुमार ललनाओके क्लान्त मुख-मण्डलपर स्वेद-बिन्दु झलक आऍगे, उस समय तुम अपनी झीनी फुहारोसे उनकी क्लान्ति दूर कर देना। वे कृतज्ञतापूर्वक अपनी मधुकरश्रेणी जैसे दीर्घ और चचल कटाक्षोसे तुम्हारी ओर देखेगी। मै यह नही कहना चाहता मित्र, कि शिव-भक्तिका फल कामिनियोके नयनाभिराम रूपका दर्शन ही है, और इसीलिए भगवान् चण्डीश्वरके दर्शनका फल तत्काल मिल जाएगा। कुछ लोग ऐसा कह सकते हैं। परन्तु मैं दृढताके साथ कहना चाहता हूॅ कि ऐसी छिछली और भोडी रसिकता शिव-भक्तिके न होनेका परिणाम है। परन्तु इसमे मुझे रच-मात्र भी सन्देह नहीं कि इन सुन्दरियोकी क्लान्ति दूर करना तुम्हारे जैसे सहृदयका पावन कर्त्तव्य होगा। महाकाल देवताके नाट्यमंडपमें सुकुमार नृत्यका आयोजन इसलिए नहीं किया

जाता कि वहाँ छिछली और भोंड़ी रसिकताके धनी शिवभक्त तत्काल फल पा जायँ। यह नृत्य मनुष्यके भीतर जो ललित और सुन्दर है, उसका अर्घ्य महादेवको चढ़ानेका बहाना-मात्र है। पुराण-मुनियोने नृत्यको देवताओंका सर्वश्रेष्ठ चाक्षुप-यज्ञ माना है। इस चाक्षुप-यज्ञद्वारा महाकाल देवताकी आराधना करना अपने-आपमे ही महत्त्वपूर्ण है। बड़े दुःखकी बात है मित्र, कि उज्जयिनीमे भी ऐसे हल्के संस्कारोंके रसिक हैं, जो इस चाक्षुप-यज्ञको ही जीवनका सबसे बड़ा फल मान लेते हैं! खैर, तुम नृत्य-परायण युवतियोंकी विलास-कातर गात्र-यष्टि और श्रम-कातर मुखमण्डलपर वर्षाकी पहली फुहार देना। वह इस नृत्यरूपी चाक्षुप-यज्ञको प्रत्यक्ष रूपसे समृद्ध करेगी और तुम्हें जलधर होनेका जो सौभाग्य मिला है, वह चरितार्थ होगा। इसीलिए कहता हूँ मित्र, कि तुम वर्षाग्र-विन्दुओंके निक्षेपसे महादेवकी आराधनामें नवीन समृद्धि जोड़ देना। निस्संदेह सहृदय नर्त्तकियाँ तुम्हें अपनी मनोहर चितवनोके प्रसादसे धन्य करेंगी।

पादन्यासक्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ॥३५॥

मैं जानता हूँ मित्र, कि नृत्य-वादित्रसे जब वहाँका वातावरण भक्ति-विद्व हो जाएगा, उस समय तुम अपने आपको सँभाल नहीं सकोगे। भक्तोंकी आराधनासे प्रसन्न होकर स्वयं महादेव जब

ताण्डव करनेको उद्यत होंगे, तो तुम्हें भी अपना जीवन चरितार्थ करनेका अवसर मिलेगा। उस समय अस्ताचलगामी सूर्यकी लाल किरणोंसे तुम्हारा शरीर नवीन जवा पुष्पके समान लाल हो गया रहेगा। महादेव जब ताण्डव करनेको उद्यत होगे और उनकी भुजाएँ विशाल वनस्पतियोंके समान आन्दोलित हो उठेगी; तो ऐसा लगेगा जैसे एकाएक भुजा-रूपी वृक्षोका जगल खड़ा हो गया है। उस समय तुम सावधानीसे मंडलाकार होकर उस भुजारूपी तरु-वनपर छा जाना। एक क्षणके लिए भवानीके चित्तमे उद्वेगकी काली छाया उदित हो जाएगी। गजासुरको युद्धमे मर्दन करके भगवान् शकरने उस शोणित-बिन्दु-वर्षी खालको ओढ़कर उन्मत्त ताण्डव किया था। क्षणभरके लिए भवानीके चित्तमे भगवान् शकरका वही पुराना रूप खेल जायगा। उस समय भगवान्के कोपको दूर करनेके लिए और उद्धत ताडव-वेशको संयत करनेके लिए देवीको बड़ा प्रयास करना पड़ा था। जिस समय शंकरके उद्दाम ताण्डवसे दिशाएँ चटाचटा उठी थीं, महाशून्य व्याकुल हो उठा था और ब्रह्माण्ड धसकने लगा था, समस्त प्रजा त्राहि-त्राहि पुकार उठी थी, उस समय देवीने ललित मनोहर लास्य-नृत्यसे भगवान्को प्रसन्न करना चाहा था। दीर्घ आयासके बाद भगवान्का कोप शमित हुआ। उनके क्रोध-ताम्र मुखमण्डलमे शान्त-स्निग्ध आभा दिखलाई पडी। जब भवानी शिवके भुजमडलमे तुम्हें गजाजिनके रूपमें लिपटा देखेगी, तो क्षण-भरके लिए उनके चित्तमें उद्वेगका संचार होगा। माताका करुणा-विद्रवित हृदय प्रजाके नवीन त्रासकी आशकासे व्याकुल हो उठेगा। वे सोचने लगेगी कि आज यह फिर गजाजिन महाकालकी भुजाओमें कैसे उलझ गया! वे शकित

हो उठेगी कि कहीं फिर वह उत्ताल नर्तनवाला दृश्य तो उपस्थित नहीं हो रहा है ! लेकिन जब वे समझ जाएँगी कि यह और कोई नहीं, वर्षाग्रबिन्दुओंका प्रथम सवाहक साध्य बलाहक है, तो उनके प्रसन्न मुखमंडलपर हल्की स्मितरेखा उदित हो उठेगी. वे एकटकसे तुम्हारी भक्ति-भावनाको निहारती रह जाएँगी । पशुपति भी अवश्य प्रसन्न होंगे, क्योंकि गजासुरके मर्दनके बादसे वे प्राय ही गजाजिन धारण करनेमे प्रसन्नता अनुभव करते है। माता पार्वती आशंकित रहती हैं कि यदि उन्हें फिरसे गजाजिन प्राप्त हो जाय, तो वही उत्ताल ताण्डव फिर शुरू हो जायगा। वे भगवान् शकरको गजाजिन धारण करनेसे विरत करना चाहती हैं। भवानीकी इस सुकुमार भावनाको भगवान् शकर भी समझते हैं और आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। उन्हे गजाजिन धारण करके ताण्डव करनेकी इच्छा तो रहती ह, पर भवानीकी भावनाओंको देखकर कुछ बोलते नहीं। जिस क्षण अनायास आर्द्र गजाजिनके रूपमें विराट् बाहु-वनमें लीन हो जाओगे, उस क्षण उनके अधरोंपर भी अवश्य लीला-विलासकी हल्की-सी स्मितरेखा खिल उठेगी। क्षण-मात्रके लिए देवीके चेहरेपर उद्वेगकी काली रेखा देखकर वे चटुल परिहासका अनायास लब्ध अवसर पाकर प्रसन्न हो जाएँगे। तुम्हे भवानी और शकर दोनोको बारी-बारीसे प्रसन्न करनेका सौभाग्य प्राप्त होगा. और तुम्हारा नयन-सुभग रूप धन्य हो जाएगा।

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥ ३६ ॥

६

मित्र, कहते हैं किसी समय ब्रह्माके अनुरोधपर शिवने सध्या-कालमे तांडव-नृत्य किया था। बड़ा विकट नृत्य था वह! तण्डु नामक मुनिको भगवान् शकरने इसी नृत्यका उपदेश किया था। किस प्रकार हाथ और पैरके योगसे १०८ प्रकारके करण बनते हैं, किस प्रकार दो विभिन्न करणोके योगसे नृत्य-मातृकाएँ बनती हैं, फिर तीन करणोसे 'कलापक', चारसे 'मंडन' पॉचसे 'सघातक' आदि बनते है। इस बातको शिवजीने निपुण भावसे तण्डु मुनिको सिखाया था। नव करणोके योगसे ३२ प्रकारके अगहारोकी विधियॉ सिखाइ थीं और अंगहारोके साथ पाद, कटि, हाथ और कठके चतुर्विध रेचकोका उपदेश दिया था, और अन्तमे रेचकों और अगहारोसे बने हुए विचित्र ताण्डवका अभिनय सिखाते-सिखाते विचित्र नृत्यमे मस्त होकर बमभोलानाथ बन गए थे। शान्त-स्निग्ध पार्वती भोलानाथके इस उत्ताल नर्तनसे इतनी मुग्ध हुई कि आनन्दोल्लासमे ललित भावसे स्वय भी नाच उठीं। तण्डु मुनिको सिखाए जानेके कारण ही शिवका नृत्य ताण्डव कहलाया और ललित विलाससे प्रेरित होनेके कारण पार्वतीका नृत्य लास्य कहलाया। तभी भक्तगण महादेव और पार्वतीके अद्भुत और सुकुमार नृत्योका अनुकरण करते आ रहे हैं। तभीसे महाकालके मन्दिरमे दोनो ही नृत्य दिखाए जाते है। दक्ष-यज्ञके अवसरपर भी महादेवने विकट ताण्डव किया था। सुना है कि उस अवसरपर शिवके गण मृदग, भेरी, पटह, भाण्ड, डिडिम, गोमुख, पणक और दर्दुर आदि आतोद्य वाद्य बजा रहे थे और महादेव लय-तालसमन्वित उद्दाम मनोहर ताण्डवसे उल्लसित हो उठे थे। महाकालके मन्दिरमे शिवभक्त लोग

इन बाजोंका प्रयोग करते हैं। मुझे यह सोचकर बडा आनन्द आ रहा है कि तुम नवीन आतोद्यका रूप धारण करोगे और अभिनव गजाजिनके रूपमे महादेवके ताण्डवके प्रत्यक्ष साक्षी बनोगे। इसी लिए कहता हूँ कि सान्ध्य-आरात्रिकके अवसरपर महाकालके मन्दिर-पर अवश्य जाना। मेरा अनुमान है कि आरती समाप्त होनेके बाद काफी रात हो जाएगी। उज्जयिनीके राजमार्ग अन्धकारसे जूझते अवश्य रहेगे, परन्तु उसे दूर करनेमें असमर्थ ही सिद्ध होगे। नगरीके राजमार्ग सूचीभेद्य अन्धकारसे आच्छन्न हो जाएँगे। नगरकी ओर जब तुम लौटोगे, तो तुम्हारी काली छाया इस अन्धकारको और निबिड बना देगी। उस समय तक घरके काम काजसे फुर्सत पाकर नवीन अनुरागसे चंचला अभिसारिकाएँ प्रेमियोंद्वारा निर्दिष्ट अभिसारस्थलोंकी ओर निकली होगी। उस समय कसौटीपर कसी हुई कांचन-रेखाके समान सौदामिनीको अपने हृदयदेशपर उद्भासित करके इन रागोद्भ्रान्ता किशोरियोंको मार्ग दिखानेमें सहायता करना। मुझे आशका है मित्र, कि तुम्हें उसी अवसरपर विनोदकी न सूझ पडे। कहीं ऐसा न कर बैठना कि झमाझम पानी बरसाकर और गंभीर गर्जन करके भयत्रस्त मुखमंडल और कम्पमान हृदयका रस लेने लगो! मेरी यह कातर प्रार्थना है कि उन प्रेमविह्वला अनुराग-वतियोको व्याकुल न बना देना। चुहल करनेका अवसर तुम्हें और मिलेगा। उज्जयिनीकी अनुरागवती प्रेमिकाओंको परिहासके लिए भी छेड़ना अनुचित होगा। चुपचाप विद्युत्‌की हल्की आभासे मार्ग दिखाकर आगे बढ़ जाना।

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ।
सौदामन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ॥३७॥

परन्तु मैंने यह प्रार्थना करके तुम्हारे साथ थोडा अन्याय भी किया । बार-बार विद्युत्प्रियाको कौंधनेको कहना सचमुच अपने हृदयकी कठोरताको ही व्यक्त करना है । जानता हूँ मित्र, इसमें तुम्हारे हृदय-देशमें विराजमान चिर-सहचरी विद्युत्प्रियाको कष्ट होगा और सुकुमार देहयष्टिवाली तन्वंगी अवश्य क्लान्त हो उठेगी । मुझे आशंका हो रही है कि उस समय तुम अपने इस अभागे मित्रको कोसने लगोगे । लेकिन मै करूँ तो क्या करूँ? मै प्रथम प्रेमकी व्याकुलताको जानता हूँ । न जाने कहाँसे यह दुर्वार अभिलाषा जाग उठती है, जो तरुण-युगलको खिन्न और व्याकुल कर देती है । मै तुम्हारे कष्टोंको अच्छी तरह समझकर ही यह कातर प्रार्थना कर रहा हूँ; परन्तु इस कष्टको यथा-कथंचित् हल्का करनेका उपाय भी बता देता हूँ । उज्जयिनीके विशाल हर्म्योंमे अनेक मनोहर भवन-वलभियाँ हैं । रातको कही कही छज्जेदार वलभियोमे कबूतरोके जोड़े विश्रब्ध भावसे विश्राम करते है । जहाँ भी तुम्हें यह अनुभव होने लगे कि तुम्हारी विद्युत्प्रिया थक गई है, वही कहीं सुन्दर भवन-वलभीमे चुपचाप कपोत-दम्पतिके बगलमे जा बैठना और प्रियाको विश्राम देनेका प्रयत्न करना । चिर-विलाससे खिन्न वधुओके लिए प्रियतमके अंकमे विश्रब्ध भावसे शयन करनेके समान अधिक शान्तिदायक दूसरा उपाय नहीं है ।

मेरा विश्वास है कि प्रत्यूष काल तक तुम दोनों मार्गकी क्लान्ति दूर करनेमे समर्थ हो सकोगे। सूर्योदय होते ही वहॉसे चल देना। मित्र, मेरा भी तो काम है। तुम्हारे-जसे बन्धु-जन मेरे-जैसे दुःखित मित्रोकी सहायता करनेका जब बीडा उठाते है, तो आलस नहीं करते। तुम भी रात-भर विश्राम करके प्रत्यूष कालमें मेरी प्रियाके पास सँदेशा पहुँचानेके कार्यमें सुस्ती न करना। जानता हूँ कि उज्जयिनीको इतनी जल्दी छोड देना सरल नहीं है। परन्तु तुम सुहृद हो, मेरे हृदयकी कथा अपने हृदयमे अनुभव कर सकते हो। सूर्य निकलते-निकलते तुम अलकाकी ओर बढ जाना।

मगर ऐसी हडबडी भी न करना कि उगते हुए सूर्यमण्डल-पर आवरणकी तरह छा जाओ। तुम नहीं जानते, लेकिन मैं जानता हूँ कि बहुत-से प्रेमी उसी समय अपनी उन प्रियाओंके ऑसू पोछते हैं, जो रात-भर प्रतीक्षा करते रहनेके बाद भी प्रियदर्शन पानेका सौभाग्य नहीं पाए होतीं। उज्जयिनीके मनचले नागरक कभी-कभी पवित्र प्रेमका निरादर भी कर बैठते हैं। सूर्योदय-कालमें खण्डिता वधुओंको आश्वासनका सुयोग तो मिल ही जाता है, और मित्र, सूर्यदेवता भी तो रात-भरकी व्याकुल पद्मिनी-लताओंकी ऑखोंपर ओसके रूपमें छाए हुए अश्रुकणोंको अपने किरणरूपी हाथोंसे पोछनेका अवसर पाते हैं। सवेरा होते ही यदि तुमने सूर्यमण्डलको ढँक दिया, तो यह पवित्र प्रेम-व्यापार भी रुक जायगा। तुम सूर्य-देवताके किरणरूपी हाथोंको रोक दोगे, तो सूर्यदेवताके चित्तमें भी रोषका संचार होगा, और न जाने कुपित होकर वे क्या कर बैठें! इसीलिए कहता हूँ कि उतावलीमें गलती न कर बैठना।

तां कस्यांचिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ३८ ॥

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेयं प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्त्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ ३९ ॥

इस प्रकार धीरे-धीरे तुम जब उज्जयिनीके उत्तरकी ओर वढ़ोगे, तो तुम्हे गभीरा नामकी नदी मिलेगी। नदियाँ तो तुमसे स्वभावत प्रेम करती हैं, परन्तु गभीरा सचमुच गंभीरा है। उसके प्रेमके इगितको तुम तबतक नही समझ सकोगे, जबतक उसकी गम्भीर प्रकृतिसे परिचित नही हो सकोगे। गभीराकी प्रसन्न जल-धारा गंभीर सहृदयके चित्तके समान निर्मल है। तुम्हारा यह प्रकृति-सुभग शरीर छायाके रूपमे उसकी निर्मल जलधारामें उद्-भासित हो उठेगा। यही क्या कम है ? प्रकृति-गंभीर प्रणयिनियोके चित्तमे छायात्म होकर प्रवेश पाना भी दुर्लभ सौभाग्य है। कुमुद पुष्पोके समान स्वच्छ विशद मछलियोके उद्वर्तके रूपमे गभी-राकी अनुरागमयी दृष्टि प्रकट होगी। इससे अधिककी आशा वहाँ न रखना। परतु इसे समझनेमे भूल भी न करना। उस प्रेम-भरी चंचल चितवनका आदर करना तुम्हारा कर्तव्य है। कहीं उस राग-वतीके हृदयके अतल गम्भीर्यसे निकले हुए प्रेम-सकेतकी उपेक्षा न कर बैठना। प्रियाकी प्रकृतिको समझकर उसके प्रीति-संकेतोका मूल्य

आँकना चाहिए। मित्र, गम्भीराका निर्मल जल ही उसका वस्त्र है। दूरसे उसकी पतली धारा नीली साड़ीकी तरह दिखाई देती है। तट-प्रदेशपर उगी हुई वेतस-लताएँ ऐसी दिखाई देती हैं, मानो गम्भीरा अपने स्रस्त-शिथिल वस्त्रको हाथोंकी मनोहर उँगलियोसे लीलापूर्वक सँभाले हुए है। जिस समय तुम उसके इस प्रेम-शिथिल रूपको देखोगे, उस समय आगे बढ़ना कठिन हो जायगा। मै खूब जानता हूँ कि तुम अनुभवी रसिक हो; अवस्था-विशेषमें पड़ी हुई प्रेमातुरा प्रियाकी उपेक्षा करना तुम्हारे जैसे सहृदयोंके लिए असम्भव बात है। बड़े-बड़े लोग इसकी माया नहीं काट सके हैं; तुम्हारे लिए भी प्रलोभनके इस जालको छिन्न करना कठिन हो जायगा। लेकिन खैर।

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम्।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥ ४० ॥

तस्याः किंचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
नीत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥४१॥

यक्षने मेघमे थोड़ी-सी चचलता देखी। उसे ऐसा लगा कि मार्ग बतानेके बहाने उसने अपने हृदयका उद्वेग-निवेदन करना प्रारम्भ कर

दिया है और मेघ उतावला हो उठा है। वह अलका-प्रस्थान करनेके लिए व्याकुल है, किन्तु अपने मित्र यक्षकी हृदय-वेदनाकी उपेक्षा भी नही करना चाहता। अभी तो मार्ग बतानेमे ही इतना समय लग गया, संदेशा तो कुछ कहा ही नहीं गया! उसने मेघसे अत्यन्त कातर वाणीमें कहा कि " मित्र, रास्ता अवश्य सुन लो, देर तो हो ही रही है; किन्तु ग़लत रास्तेसे कितनी देर होगी, यह कहना कठिन है।" यक्षकी ऑखोमे गंभीराके उस पारका मार्ग चित्र-लिखित-सा प्रत्यक्ष हो उठा। उसने कल्पनाकी आँखोसे देखा कि मेघ उसके प्रणयका संदेश लेकर देवगिरिकी ओर उड़ा जा रहा है। स्थान-स्थानपर बरस कर वह प्यासी धरतीके सिक्त धरातलसे सोंधी गंध उत्पन्न किए जा रहा है। हवा इस सोंधी गन्धसे रमणीय हो उठी है। विन्ध्याटवीके जंगली हाथी गर्जना करके इस वायुको पीकर मतवाले बनते जा रहे है, और विंध्य-पर्वतकी पहाड़ियोके उदुम्बर (गूलर) वृक्षोंके फल इस सोधी और भारी हवाका सपर्क पाकर लाल होते जा रहे हैं। मेघ देवगिरिके मार्गमे दौड़ता जा रहा है। लेकिन वह क्या देवगिरिको भी इसी प्रकार पार कर जाएगा? क्या वह एक क्षणके लिए भी अब रुकेगा नही? क्या धरतीकी सोधी गंधसे गुरुभार बनी हुई वायु देवगिरिकी वनस्थलियोमे चच-लता ले आकर आगे बढ़ जाएगी? मेघ उड़ता जा रहा है, उद्दाम वेगसे बढ़ता चला जा रहा है। रुकता नहीं, झुकता नही, निरन्तर शानदार उड़ानसे आकाशको नयनाभिराम बनाता हुआ आगे ही बढ़ता चला जा रहा है। यक्षने उत्क्षिप्त होकर कहा—"रुको मित्र। यह देवगिरि है, इस देवगिरि पर्वतपर महादेवके पुत्र, पार्व-

तीके दुलारे कुमार स्कन्द जमकर बस गए है। देवगिरि उनकी नियत वासस्थली है। यह उनका सर्वप्रिय वासस्थल है। यहाँ भी फिर पूज्य-पूजाव्यतिक्रम न कर बैठना। फूलोके बादल बनकर आकाश-गगाके जलसे आर्द्र कुसुम-राशिकी वर्षा करके इस दक्ष कुमारकी पूजा अवश्य कर लेना। इन्द्रकी सेनाओकी रक्षा करनेके लिए बालचन्द्रका आभरण धारण करनेवाले महादेवने अपने उस तेजको अग्निमें निहित किया था, जो सूर्यसे भी प्रचण्ड था। उसी तेजके मूर्तिमान रूप स्कन्ददेवता है। इनकी उपेक्षा न कर बैठना। भवानी अपने इस लाड़ले पुत्रको कितना प्यार करती हैं, इसका अदाजा तुम्हे इसीसे लग जायगा कि उनका प्रिय वाहन मयूर जब नृत्य-उल्लासमें नाच उठता है और उसका वह मनोहर बर्ह, जिसमें ज्योति-रेखाके वलय पडे हुए है, जब गिर जाता है, तो वे अपने दुलारेके वाहनका पंख समझकर अपने उन कानोमे खोस लेती है, जो नील कमलके दलोको प्राप्त करनेके उपयुक्त अधिकारी हैं। कार्तिकेयके उस मयूरकी सफेद ऑखे शिवजीके भाल-देशपर स्थित चद्रमाकी किरणोसे और भी चमकती रहती हैं। कार्तिकेयपर फूलोकी वर्षा करनेके पश्चात् तुम अपने उस मन्द्र ध्वनिवाले गर्जनसे मयूरको नचा देना, जो देवगिरिकी कन्दराओसे निकली प्रतिध्वनिसे और भी गम्भीर हो उठेगी। जरा सोचो तो मित्र, कुमार कार्तिकेयका यह मयूर कितना बडभागी है कि त्रैलोक्य-जननी अपने कानोसे नील कमलको हटाकर उसके स्खलित बर्हको धारण करती है! इसीलिए कहता हूँ, जरा रुककर कार्तिकेयकी अभ्यर्थना अवश्य कर लेना।

मेरे जलधर मित्र, मै तुम्हारे सहज समदर्शी रूपका प्रशंसक हूँ। ऊँचा हो या नीचा हो, उजाड़ हो या बगीचा हो; तुम समान भावसे सबको जीवन-दान देते हो। किन्तु सब लोग ऐसी उदार नीतिवाले नही हुआ करते। लोगोमे जन्मको लेकर, कुल और देशको लेकर, धन और दरिद्रताको लेकर छोटा-बड़ा समझनेकी भावना प्रबल है। जिस देवताको देवगिरिमे अधिष्ठित देख रहे हो, उसके उद्भवके प्रतापसे तुम परिचित हो ही; लेकिन कदाचित् तुम्हे यह नही मालूम कि इस देवताका उत्पत्ति-स्थान सरकडोका जगल है! जिस तेजको पार्वती नही धारण कर सकी, अग्निदेव नही धारण कर सके, महिमामयी गंगाकी धारा नहीं धारण कर सकी, उसे सरकडोके घने जगलने निर्विकार भावसे स्वीकार कर लिया। कहते, है, उस प्रदीप्त तेजसे गगाकी धारामे भयंकर दाहक ज्वाला आविर्भूत हुई थी। उस तेजको सहन न कर सकनेके कारण तरंग-रूपी हाथोंसे उन्होने ठेलकर उसे पुलिन-भूमिपर फेक दिया। वह तेज सरकण्डोंके जगलमें छः टुकड़ोमे विभाजित होकर कुमार 'षडानन' के रूपमे आर्विभूत हुआ। उस समय पति-परित्यक्ता कृत्तिकाएँ उसी शरवनसे कही जा रही थी। उन्होने षडानन कुमारको स्तन्य-पान कराकर बडा किया, इसलिए उस कुमारका नाम कार्तिकेय पडा। सरकण्डोके जगलमें पैदा होनेके कारण इस महातेजस्वी कुमारके प्रति देवताओमें उपेक्षा-बुद्धि थी। कुमारने विद्रोह किया। उस परम तेजस्वी कुमारके पराक्रमसे विचलित होकर देव-सेनाको उसे स्वामी-रूपमे वरण करना पड़ा और तब जाकर राक्षसोके भयंकर उत्पातसे देवलोककी रक्षा हो सकी। ऐसी प्रसिद्धि है मित्र, कि दीर्घकाल तक स्कन्द-कुमार वन्य जातियोंके ही देवताके रूपमें

पूजित रहे। आर्य जनताने बहुत दिनो तक उन्हे अपना देवता नहीं माना। लेकिन तेजकी कोई कब तक उपेक्षा कर सकता है? आजके प्रवल प्रतापी नरपतियोंने कुमारको प्रमुख देवताके रूपमें स्वीकार किया है। प्राग्ज्योतिषपुरसे वंक्षु-नद तक जो गुप्त-नरपतियोका प्रताप और विक्रम सूर्यके समान चमक रहा है, उसमें स्कन्दकी आराधनाका प्रमुख हाथ है। ऐसे महातेजस्वी देवताकी उपेक्षा सिर्फ़ इसलिए करना कि वह सरकण्डोके जगलमे उत्पन्न हुआ है, अनुचित वात थी। तुम ऐसा प्रमाद न कर वैठना। शरवन (सरकडोका वन) मे उत्पन्न देवताकी आराधना किए विना आगे न वढ़ना। देवगिरिमें स्कन्द देवताकी आवास-भूमिके चारो ओर विपम पर्वत-मालाएँ हैं। सीधी उड़ान भरके तुम आगे नही वढ सकोगे। इस विपम पार्वत्य मार्गको पार करनेके लिए तुम्हे रह-रहकर ऊँचाईपर उड़ना पड़ेगा और इस प्रकार तुम्हें मार्गको उल्लघित करके जाना अर्थात् ऊपर उठ-उठके लॉघना पड़ेगा। ऐसा अवसर आ सकता है कि तुम्हे इतनी ऊँचाईपर उठना पडे कि मार्गमें सिद्ध-दंपतियोसे टकरा जाना पड़े। ये लोग प्रतिदिन कुमार कार्तिकेयकी पूजा करनेके लिए इधर आया करते हैं। इन सिद्ध-दंपतियोका सुन्दर रूप तुम्हें वडा मनभावना माल्म होगा, परन्तु यह आशंका नहीं है कि उन्हे रास्ता देनेके लिए तुम्हें दायें-वाये मुडना पडे। अगर ऐसी वक्रगतिसे चलना पड़ा, तो तुम्हे अवश्य कष्ट होगा। सिद्ध-दंपतियोके हाथमे मधुर-ध्वनि करनेवाली वीणा अवश्य रहती है। तुम्हे देखते ही वे अवश्य रास्ता छोड़ देंगे; क्योकि उन्हे डर होगा कि तुम्हारे आर्द्र शरीरसे जलके जो फुहारे अनायास निकला करते है, वे वीणाके तारोको भिंगो कर ऐसा न वना दे कि उनसे सुन्दर

ध्वनि निकलनेमें कठिनाई हो। अपनी वीणाको वे प्राणोसे भी अधिक प्यार करते हैं, इसलिए मै निश्चित जानता हूँ कि तुम्हें दूरसे देखकर ही वे रास्ता छोड़ देगे। इस प्रकार बाधाओंसे विचलित हुए विना तुम सरसर उड़ते चले जाना। देवगिरिकी उच्चावच पार्वत्य भूमिको पार करते ही तुम्हें चंवलके विस्तीर्ण ढूहोके ऊपरसे उडना पडेगा। चवलका पुराना नाम चर्मण्वती है। शरवनोत्पन्न महातेजस्वी देवता कुमार कार्तिकेयके समान इस शक्तिशाली नदीके प्रति भी आर्य जनताने दीर्घकालसे उपेक्षाका भाव बना रखा है। थोड़ी ही दूरपर जो दशपुर नामका नगर मिलेगा, वहाँके प्रतापी राजा रन्तिदेवने 'गवालंभ' यज्ञ किया था। इस सज्ञपन यज्ञमे सैकड़ो गाऐं बलि हुई थीं। कहते है कि उनके चमड़ोको धोकर सुखाया जाता था और उससे जो पानी वहा, वही चर्मण्वती नदीके रूपमे परिणत हो गया। इन प्रदेशोमे प्रसिद्ध है कि चमड़ेसे उत्पन्न होनेके कारण यह नदी अपवित्र हो गई है। मै जब इन गवालभ यज्ञोकी कल्पना करता हूँ, तो भयसे व्याकुल हो उठता हूँ। रुद्रोकी माता, आदित्योकी स्वसा, वसुओकी दुहिता सुरभि-तनयाएँ क्या इसी प्रकार बलि देनेके लिए बनी है? महाराज रन्ति-देवकी कीर्ति चर्मण्वती नदीके प्रवाहमे परिणत होकर रह गई और परिणाम यह हुआ है कि योजनो तक इस नदीने अत्यन्त उर्वर भूमिको ऊबड-खावड़ ढूहोके रूपमे वंध्या बना रखा है। जहाँ-तक इस नदीके दृप्त पौरुषका सामर्थ्य है, वहाँकी भूमिको जोतनेके लिए कोई 'गोवंश' का उपयोग नहीं कर सकता। पता नहीं प्रजाने किस अभिप्रायसे चर्मण्वती नदीके प्रादुर्भावके विषयमे ऐसी कीर्ति-कथा गढ़ ली है। परन्तु मै कहता हूँ मित्र, जिस दिन प्रजा इस

पूजित रहे। आर्य जनताने बहुत दिनों तक उन्हे अपना देवता नहीं माना। लेकिन तेजकी कोई कब तक उपेक्षा कर सकता है? आजके प्रवल प्रतापी नरपतियोंने कुमारको प्रमुख देवताके रूपमें स्वीकार किया है। प्रागुज्योतिपपुरसे वंक्षु-नद तक जो गुप्त-नरपतियोका प्रताप और विक्रम सूर्यके समान चमक रहा है, उसमें स्कन्दकी आराधनाका प्रमुख हाथ है। ऐसे महातेजस्वी देवताकी उपेक्षा सिर्फ इसलिए करना कि वह सरकण्डोके जगलमे उत्पन्न हुआ है, अनुचित वात थी। तुम ऐसा प्रमाद न कर वैठना। शरवन (सरकडोका वन) मे उत्पन्न देवताकी आराधना किए विना आगे न वढ़ना। देवगिरिमें स्कन्द देवताकी आवास-भूमिके चारो ओर विपम पर्वत-मालाएँ हैं। सीधी उडान भरके तुम आगे नही वढ सकोगे। इस विषम पार्वत्य मार्गको पार करनेके लिए तुम्हें रह-रहकर ऊँचाईपर उड़ना पड़ेगा और इस प्रकार तुम्हें मार्गको उल्लघित करके जाना अर्थात् ऊपर उठ-उठके लॉघना पड़ेगा। ऐसा अवसर आ सकता है कि तुम्हे इतनी ऊँचाईपर उठना पडे कि मार्गमें सिद्ध-दंपतियोसे टकरा जाना पड़े। ये लोग प्रतिदिन कुमार कार्तिकेयकी पूजा करनेके लिए इधर आया करते हैं। इन सिद्ध-दपतियोका सुन्दर रूप तुम्हें वड़ा मनभावना मालूम होगा, परन्तु यह आशका नहीं है कि उन्हें रास्ता देनेके लिए तुम्हें दाये-वायें मुड़ना पड़े। अगर ऐसी वक्रगतिसे चलना पड़ा, तो तुम्हे अवश्य कष्ट होगा। सिद्ध-दंपतियोके हाथमें मधुर-ध्वनि करनेवाली वीणा अवश्य रहती है। तुम्हे देखते ही वे अवश्य रास्ता छोड़ देगे; क्योकि उन्हें डर होगा कि तुम्हारे आर्द्र शरीरसे जलके जो फुहारे अनायास निकला करते है, वे वीणाके तारोको भिगो कर ऐसा न वना दे कि उनसे सुन्दर

ध्वनि निकलनेमें कठिनाई हो। अपनी वीणाको वे प्राणोसे भी अधिक प्यार करते हैं, इसलिए मै निश्चित जानता हूँ कि तुम्हें दूरसे देखकर ही वे रास्ता छोड देगे। इस प्रकार वाधाओसे विचलित हुए विना तुम सरसर उड़ते चले जाना। देवगिरिकी उच्चावच पार्वत्य भूमिको पार करते ही तुम्हें चत्रलके विस्तीर्ण ढूहोके ऊपरसे उड़ना पडेगा। चत्रलका पुराना नाम चर्मण्वती है। शरवनोत्पन्न महातेजस्वी देवता कुमार कार्तिकेयके समान इस शक्तिशाली नदीके प्रति भी आर्य जनताने दीर्घकालसे उपेक्षाका भाव वना रखा है। थोडी ही दूरपर जो दशपुर नामका नगर मिलेगा, वहॉके प्रतापी राजा रन्तिदेवने 'गवालंभ' यज्ञ किया था। इस सज्ञपन यज्ञमे सैकड़ो गाएँ वलि हुई थीं। कहते हैं कि उनके चमडोको धोकर सुखाया जाता था और उससे जो पानी वहा, वही चर्मण्वती नदीके रूपमे परिणत हो गया। इन प्रदेशोमे प्रसिद्ध है कि चमडेसे उत्पन्न होनेके कारण यह नदी अपवित्र हो गई है। मे जब इन गवालभ यज्ञोकी कल्पना करता हूँ, तो भयसे व्याकुल हो उठता हूँ। रुद्रोकी माता, आदित्योकी स्वसा, वसुओकी दुहिता सुरभि-तनयाएँ क्या इसी प्रकार वलि देनेके लिए वनी है? महाराज रन्ति-देवकी कीर्ति चर्मण्वती नदीके प्रवाहमे परिणत होकर रह गई और परिणाम यह हुआ है कि योजनो तक इस नदीने अत्यन्त उर्वर भूमिको ऊवड-खावड़ ढूहोके रूपमें वंध्या वना रखा है। जहॉ-तक इस नदीके दृप्त पौरुपका सामर्थ्य हैं, वहॉकी भूमिको जोतनेके लिए कोई 'गोवश' का उपयोग नहीं कर सकता। पता नहीं प्रजाने किस अभिप्रायसे चर्मण्वती नदीके प्रादुर्भावके विपयमें ऐसी कीर्ति-कथा गढ़ ली है। परन्तु मै कहता हूँ मित्र, जिस दिन प्रजा इस

नदीके प्रवाहको मगल-बुद्धिसे निश्चित प्रणालिका-मार्गसे नियंत्रित कर लेगी, उस दिन इस बदनाम नदीके प्रवाहसे सोना झरेगा। तेजको बुरा नाम देकर बदनाम करना अपनी असमर्थताका विज्ञापन करना है। तुम यहाँ भी चूक न जाना। ज़रा झुककर इस महातेजस्विनी नदीका सम्मान कर लेना। इससे तुम उपयुक्त व्यक्तिका उपयुक्त सम्मान ही करोगे।

त्वन्निष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसंपर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम्॥ ४२ ॥

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान् व्योमगङ्गाजलार्द्रैः।
रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना—
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धितेजः॥ ४३ ॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति।
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः॥ ४४ ॥

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घिताध्वा
सिद्धद्वन्द्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः।

व्यालम्बेथाः सुरभितनया लम्भजां मानयिष्य-
न्स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥ ४५ ॥

जिस समय तुम चर्मण्वती नदीमे पानी लेनेके लिए झुकोगे उस समय तुम्हारा मार्ग छोडकर हट गए हुए सिद्ध विद्याधर आदि देवजातिके गायक तुम्हारी जो अद्भुत शोभा देखेंगे, उसकी कल्पना करके मेरा हृदय उच्छ्वसित हो रहा है। कैसी होगी वह शोभा! सुदूर ऊपरसे सिद्ध विद्याधर चर्मण्वती नदीकी चौडी धाराको भी पतली लकीरके समान देखेंगे, उसपर झुका हुआ तुम्हारा यह नील शरीर, जिसने भगवान् विष्णुके रंगको चुरा लिया है, इन्द्रनील मणिके समान दिखाई पड़ेगा! ऑखे मल-मलकर सिद्धगण अवाक्-भावसे सोचेंगे कि धरतीने एक लड़वाली मोतीकी माला तो नहीं पहन रखी है, जिसके मध्य भागमे बडी-सी इन्द्रनीलमणि शोभित हो रही है! धरतीको एकावली मुक्तामालाकी इन्द्र नीलमणि! सिद्ध विद्याधरोकी दृष्टि जिस समय चकित भावसे इस शोभाको देखती रहेगी, उस समय वह अपने-आपमे भी मामूली शोभा नहीं होगी। मै यह सोच-सोचकर पुलकित हो रहा हूँ।

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे
तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम् ।

प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ४६ ॥

७

थोडी देरके लिए सिद्ध विद्याधरोको चकित करनेवाली शोभाका हेतु बनकर तुम आगे बढ़ जाना। देरतक अच्छे-से-अच्छे कौतुकका पात्र बनना उचित नही होता। ज्यो ही तुम चर्मण्वतीके ह्रदोको पार करोगे, त्यो ही दशपुर नामक नगरके ऊपर चक्कर काटते दिखाई दोगे। मित्र, सिद्ध-वधुओकी मुग्ध-चकित-दृष्टिका प्रसाद व्यर्थ नही जाएगा। दशपुरकी वधुएँ भी तुम्हे अपनी बडी-बडी ऑखोसे कौतूहलपूर्वक देखेगी। उन बड़ी-बड़ी ऑखोकी भ्रूलताएँ विभ्रम-विलाससे अनभिज्ञ नहीं है। जब उनके नयन-पक्ष्म ऊपर उठे और उनमे कृष्णशार प्रभावाली वह मनोहर चितवन, जो रंगोमे उछाले हुए कुन्द पुष्पोके पीछे दौड़नेवाली भ्रमरावलीकी शोभाकी प्रतिस्पर्द्धिनी होती है, तुम्हारी ओर व्यापारित हो, तो मेरे सहृदय मित्र, तुम उनका लक्ष्य बनना। अपनी शोभाको ऐसे मनोहर नयनोका विषय नही बनाओगे, तो फिर इस सजल श्यामल रूपको कैसे चरितार्थ करोगे!

यक्षने इतना कहनेके बाद देखा कि मेघ मुस्कुरा रहा है। सोचने लगा, उससे क्या कोई प्रमाद हो गया है? क्या वह ऐसा कुछ कह गया है, जो उसे नहीं कहना चाहिए? विरह-विधुरका चित्त वशमे नही रहता, कण्ठ गद्-गद् हो आता है और वाणी स्खलित हो जाती है। अवश्य उससे कोई स्खलन हुआ है, नही तो मेघ-जसा मित्र ऐसी अर्थ-भरी हँसी नही हँसता। उसे तुरन्त स्मरण आया कि उसने दशपुर-वधुओके नयनोको उपमामे कृष्णशार-प्रभाकी कान्तिवाला कहा है। जो कहना चाहता था, वह नहीं

कहा गया, और जो नहीं कहना चाहता था, वह अनायास मुँहसे निकल गया। कृष्णशारका अर्थ हुआ अधिक काली, कुछ सफेदी और कुछ लालीकी मिश्रित छटा। वह दृष्टि जो 'अमिय हलाहल मद-भरी' होती है तथा जिसमे 'श्वेत श्याम और रतनार' का मिश्रण होता है। लेकिन मेघने कहना चाहा था 'कृष्णसार' अर्थात् मृग-विशेष। उसके मनमे रन्तिदेवके विकट यज्ञोकी बात घूम रही थी। वह बताना चाहता था कि तुम जिस देशमें जा रहे हो, वह याज्ञिक देश है, वहाँ कृष्णसार मृग स्वच्छन्द चरा करते हैं। उनकी काली-काली कँटीली आँखोकी चितवन वैसी ही होती है, जैसी सफेद कुन्द-पुष्पके पीछे दौड़नेवाली भ्रमर-पंक्ति। परन्तु स्खलित वचनके कारण 'कृष्णसार' की जगह 'कृष्णशार' कह गया। बोला—बुरा क्या है मित्र! विरही वन्धुके स्खलित वचनोसे यदि कृष्णसार मृगकी कान्तिवाले नयन 'अमिय हलाहल मद-भरे' मान लिए जायँ, तो जो व्यक्ति उनका विपय वन रहा है, उसे हानि ही क्या है? जानता हूँ, तुम मेरे स्खलित वचनोसे अपने ही वैदग्ध्यका अपलाप कर लेना चाहते हो। लेकिन मै सचमुच मानता हूँ कि दशपुर-वधुओके नयन, पवित्र यज्ञ-भूमिमे संचरण करनेवाले कृष्णसार मृगोकी प्रभाको ही धारण करते है। दशपुर-वधुओकी पवित्र ऑखोसे इन भीत-चपल मृगो और उनके भोले-भोले पवित्र दृगोकी कान्ति ही तुलनीय हो सकती है। मैं सचमुच ही तुम्हें मादक दृष्टिका शिकार होनेकी आशकासे बचाना चाहता हूँ। मेरी स्खलित वाणीको प्रमाण न मान लेना।

देखो वन्धु, तुम अव पवित्र यज्ञ-भूमिके मार्गसे संचरण करोगे। यहाँका सौन्दर्य भी निश्छल और पवित्र होता है। इधर तो

७

थोडी देरके लिए सिद्ध विद्याधरोको चकित करनेवाली शोभाका हेतु बनकर तुम आगे बढ जाना। देरतक अच्छे-से-अच्छे कौतुकका पात्र बनना उचित नही होता। ज्यो ही तुम चर्मण्वतीके ढूहोको पार करोगे, त्यों ही दशपुर नामक नगरके ऊपर चक्कर काटते दिखाई दोगे। मित्र, सिद्ध-वधुओकी मुग्ध-चकित-दृष्टिका प्रसाद व्यर्थ नही जाएगा। दशपुरकी वधुएँ भी तुम्हे अपनी बड़ी-बडी आँखोसे कौतूहलपूर्वक देखेंगी। उन बडी-बडी आँखोकी भ्रूलताएँ विभ्रम-विलाससे अनभिज्ञ नही हैं। जब उनके नयन-पक्ष्म ऊपर उठें और उनमे कृष्णशार प्रभावाली वह मनोहर चितवन, जो रगोमें उछाले हुए कुन्द पुष्पोके पीछे दौडनेवाली भ्रमरावलीकी शोभाकी प्रतिस्पर्द्धिनी होती है, तुम्हारी ओर व्यापारित हो, तो मेरे सहृदय मित्र, तुम उनका लक्ष्य बनना। अपनी शोभाको ऐसे मनोहर नयनोका विषय नही बनाओगे, तो फिर इस सजल श्यामल रूपको कैसे चरितार्थ करोगे !

यक्षने इतना कहनेके बाद देखा कि मेघ मुस्कुरा रहा है। सोचने लगा, उससे क्या कोई प्रमाद हो गया है ? क्या वह ऐसा कुछ कह गया है, जो उसे नहीं कहना चाहिए ? विरह-विधुरका चित्त वशमे नही रहता, कण्ठ गद्-गद् हो आता है और वाणी स्खलित हो जाती है। अवश्य उससे कोई स्खलन हुआ है, नहीं तो मेघ-जसा मित्र ऐसी अर्थ-भरी हँसी नहीं हँसता। उसे तुरन्त स्मरण आया कि उसने दशपुर-वधुओके नयनोको उपमामें कृष्णशार-प्रभाकी कान्तिवाला कहा है। जो कहना चाहता था, वह नहीं

कहा गया, और जो नहीं कहना चाहता था, वह अनायास मुँहसे निकल गया। कृष्णशारका अर्थ हुआ अधिक काली, कुछ सफेदी और कुछ लालीकी मिश्रित छटा। वह दृष्टि जो 'अमिय हलाहल मद-भरी' होती है तथा जिसमे 'श्वेत श्याम और रतनार' का मिश्रण होता है। लेकिन मेघने कहना चाहा था 'कृष्णसार' अर्थात् मृग-विशेष। उसके मनमे रन्तिदेवके विकट यज्ञोकी बात घूम रही थी। वह बताना चाहता था कि तुम जिस देशमे जा रहे हो, वह याज्ञिक देश है, वहाँ कृष्णसार मृग स्वच्छन्द चरा करते हैं। उनकी काली-काली कँटीली ऑखोंकी चितवन वैसी ही होती है, जैसी सफेद कुन्द-पुष्पके पीछे दौड़नेवाली भ्रमर-पंक्ति। परन्तु स्खलित वचनके कारण 'कृष्णसार' की जगह 'कृष्णशार' कह गया। बोला—बुरा क्या है मित्र! विरही बन्धुके स्खलित वचनोसे यदि कृष्णसार मृगकी कान्तिवाले नयन 'अमिय हलाहल मद-भरे' मान लिए जायँ, तो जो व्यक्ति उनका विषय बन रहा है, उसे हानि ही क्या है? जानता हूँ, तुम मेरे स्खलित वचनोसे अपने ही वैदग्ध्यका अपलाप कर लेना चाहते हो। लेकिन मै सचमुच मानता हूँ कि दशपुर-वधुओके नयन, पवित्र यज्ञ-भूमिमें संचरण करनेवाले कृष्णसार मृगोकी प्रभाको ही धारण करते है। दशपुर-वधुओकी पवित्र ऑखोसे इन भीत-चपल मृगो और उनके भोले-भोले पवित्र दृगोकी कान्ति ही तुलनीय हो सकती है। मैं सचमुच ही तुम्हे मादक दृष्टिका शिकार होनेकी आशकासे बचाना चाहता हूँ। मेरी स्खलित वाणीको प्रमाण न मान लेना।

देखो बन्धु, तुम अब पवित्र यज्ञ-भूमिके मार्गसे संचरण करोगे। यहॉका सौन्दर्य भी निश्छल और पवित्र होता है। इधर तो

एक प्रकारके ऐसे भी रसिक जन दिखाई देने लगे हैं, जो पुर-वधूके प्रत्येक कौतूहलमे सामिलाप भाव ही देखते है। वे यह मानना ही नही चाहते कि पुर-वधुओंकी कौतूहल-भरी दृष्टि जीवन-देवताकी उस नित्य विमर्श-शक्तिकी रूपमय अभिव्यक्ति है, जो प्रति क्षण मृत्युके स्नानसे सृष्टिको पवित्र करती रहती है और नित्य नवीन शोभाके प्रति औत्सुक्य-चचल भाव जागृत करती है। कातूहल नवीनके प्रति न जाने किस आत्मीयताके सम्बन्धको निरन्तर व्यक्त करता रहता है। रम्य वस्तुओंको देखकर और मधुर ध्वनियोका सुनकर सुखित जन्तु भी पर्युत्सुक हो उठता है। निस्सन्देह यह पर्युत्सकी भाव अकारण नही है। अवश्य ही जन्मजन्मान्तरका सौहार्द चित्तमें व्याकुल स्मृतियोंको जगाता रहता है और मायाके कचुकसे बद्ध जीव छटपटाकर रह जाता है और उन सम्बन्धोको स्मरण नहीं कर पाता। कुतूहल विराट् अमेदानुभूतिकी प्रत्यक्ष दृग्गोचर अभि-व्यक्ति है, उसको छोटा नहीं बनाना चाहिए। आगे-पीछे, दाहिने-बाएँ, जीवनमें सैकड़ों वस्तुओके प्रति मनुष्य कुतूहली होता है। कौन बताएगा मित्र, कि हमारे अस्तित्वके किस अतल गाभीर्यसे अकारण सौहार्दकी यह क्षीण आभा हमारे चैतन्यके ऊपरले स्तरको क्षण-भरके लिए उद्भासित कर दिया करती है। मै भी नही जानता और तुम भी नहीं जानते कि पौर रमणियों और जानपद-वधुओंकी मुग्ध दृष्टियोंमें तुम्हारी इस श्यामल शोभाके प्रति कौन-सा सौहार्द-भाव अहेतुक उद्वेल हो उठता है। कहीं कुछ गहराईमें होना चाहिए जो हमारी सारी सत्ताको आलोड़ित कर देता है।

यक्षने देखा कि मेघके परिहास-लोल मुख-मंडलपर गम्भीर भाव आ गया है। वह सौन्दर्य-तत्त्वकी अधिक व्याख्या सुननेको प्रस्तुत नहीं है। विरही हो, तो विरहीकी तरह बात करो बाबा! मनुष्य-जीवनके अस्तित्वकी गहराईमें डुबकी क्यो लगाते हो? क्षण-भरके लिए उसका कठ सूख गया, ऑखे सजल हो गई! ऐसा जान पडा, जैसे हृदय-स्थित प्रियाने भृकुटि-तर्जनके साथ कहा हो—"विलम्बके कारण तुम हो।" यक्षने अपना अपराध समझा। दशपुर तक पहुँची हुई उसकी दृष्टि तीव्र गतिसे अलकाकी ओर धावमान हुई। उसने देखा—मेघ सरस्वती और दृषद्वती नामक देव-नदियोके अन्तर्वर्ती द्वावमे उडता चला जा रहा है। उसकी छाया इस देवनिर्मित ब्रह्मावर्त्त देशको अवगाहित करती हुई आगे वढती जा रही है। वह उस इतिहास-विश्रुत कुरुक्षेत्र प्रदेशके ऊपर उड़ता जा रहा है, जहॉ किसी समय गाण्डीव-धन्वा अर्जुनने इसी प्रकार बाणकी वर्षासे छबीले नौजवान वीरोके मनोहर मुखको अपने बाणोकी सफेद धारासे उसी प्रकार भूलुठितकर डाला था, जिस प्रकार झमाझम वर्षा करके उसका मित्र मेघ कुरुक्षेत्रके सरोवरोके कमलोको निपातित कर रहा है। ठीक रास्ते रास्ते जा रहे हो दोस्त, आगे बढते जाओ। अलका जानेका मार्ग इसी क्षत्रिय-विनाशी क्षेत्रके ऊपरसे है। हाय-हाय! युद्धकी भीषण ज्वालामे इस कौरव-क्षेत्रमे न जाने कितनी सुहागिनोंका सुहाग झुलस गया था। गाण्डीव-धन्वाके प्रबल भुजदण्डने न जाने कितने होनहार तरुणोका वध किया था। युद्ध भी कैसा भयंकर रोग है! जब वह मनुष्यके चित्तको उन्मत्त बना देता है, तो एक दूसरेके प्राण-घातके लिए तत्पर जंगली

भैसोसे मनुष्यमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। लेकिन अव बात वढ़ाना उचित नही है। कुरुक्षेत्रका रक्त-कर्दम अव सूख गया है। काल-देवताका स्निग्ध भृकुटि-पात इस भयंकर नर-संहारके ऊपर विस्मृतिका पर्दा डाल चुका है—उसी प्रकार जिस प्रकार, मेघ इस धरतीपर अपनी छाया डालता भागा जा रहा है।

तासुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
पक्ष्मोत्क्षेपादुपरि विलसत्कृष्णशारप्रभाणाम्।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
पात्रीकुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ४७ ॥

ब्रह्मावर्तं जनपदमथ च्छायया गाहमानः
क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः।
राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन्मुखानि ॥ ४८ ॥

मेघ अब सरस्वतीके पवित्र जलके उपर उड़ता चला जा रहा है। सरस्वतीका पवित्र जल! महाभारतके सबसे फक्कड़ और मस्तमौला वीर बलराम जब कौरव और पाण्डव सेनाओमें अपने ही प्रियजनोको जूझते देखकर युद्धसे विमुख हो गए थे, तो इस भयकर शत्रु-प्रतिद्वन्द्वितामें निरर्थक अहकारो और संकीर्ण वैर-भावका आभास पाकर वे कुरुक्षेत्रकी भीषण मार-काटसे दूर रहनेका संकल्प लेकर इसी सरस्वती नदीके तटपर आ बसे थे। अपनी अत्यन्त प्रिय हालाको, जो रेवतीके नयनोसे अकित होनेके कारण और भी मादक हो उठती थी, छोड़कर इस सरस्वतीके पवित्र जलका ही सेवन

करते थे। उल्लसित भावसे यक्षने कहा—“मित्र, तुम भी इस पवित्र जलका पान करके शुद्ध हो जाओगे। भीतर स्वच्छ और ऊपरसे काले।”

हित्वा हालामभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्का
बन्धुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना-
मन्तः शुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः॥ ४९॥

मेघ और भी आगे बढता है। उस महिमामयी नदीके पास पहुँचता है, जो कनखलके निकट शैलाधिराज हिमालयसे नीचे उतरती है। यह जह्नु मुनिकी कन्या राजा सगरके पुत्रोको स्वर्ग भेजनेमें सोपान-पक्ति बन गई थी। गंगा सचमुच महिमामयी नदी है। जितनी ही पवित्र उतनी ही शक्तिमती। महिमामयी गंगाने गौरीकी कुटिल भृकुटियोकी परवाह नही की, अपने उज्ज्वल फेनोके बहाने उनकी इस भ्रूभगिमाका उपहास किया, और स्वाधीनभर्तृका ज्येष्ठा नायिकाकी भॉति अपने तरंग-रूपी हाथोसे शिवके भालदेशमे विराजमान चन्द्रमासे लगकर भगवान् शकरके केशोको पकड लिया था। मेघ यहॉ भी उडता चला जा रहा है। क्या इस महिमामयी नदीको वह यो ही छोड़ जायगा? “नहीं मित्र, गगा संसारकी अप्रतिम नदी है। वह भगवानकी उपचिकीर्षाका ही स्रोतमय रूप है। इस पवित्र नदीका पानी तुम्हें पीना ही पडेगा। जब तुम गंगाका स्वच्छ स्फटिकके समान निर्मल जल पीनेके लिए झुकोगे, तो ऐसा मालूम होगा, जैसे कोई विशाल दिग्गज अपना आधा

पिछला हिस्सा उठाकर पानी पीनेके लिए आकाशसे झुकता आ रहा है। उस निर्मल जलधारामे तुम्हारी काली छाया जब दौडती रहेगी, तो देखनेवालोको ऐसा अभिराम मालूम होगा जैसे प्रयागके बहुत पहले ही अप्रत्याशित स्थानपर गगा और यमुनाका संगम हो रहा है।"

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।
गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शंभोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५० ॥

मेघ और भी आगे बढ़ता है। यक्षके कल्पना-विहारी नयनोंके सामने शोभाका समुद्र लहरा उठता है। अब हिमालयकी देवभूमि सामने आती जा रही है। गंगा जिस पर्वतसे निकलती है, उसकी शिलाओमें कस्तूरी-मृगके बैठनेके कारण सुगधि आ गई होती है। वह नीचेसे ऊपर तक हिमाच्छादित होनेके कारण सफेद दिखाई देता है। इसी तुषार-गौर पर्वतकी ऊँची चोटीपर मेघ थोडा विश्राम करता है। ठीक है, मित्र, देवगिरिसे इस तुषार-गौर पर्वत तक तुम केवल उडते ही जा रहे हो। नदियोका पानी पीते हो और प्रजाके मंगलके लिए उसे दोनों हाथो लुटाते हो। थोडा विश्राम तो करना ही चाहिए। मै उस शोभाकी कल्पना कर सकता हूँ. जिस समय तुम गंगाको जन्म देनेवाले महान् गिरिराजके तुषार-गौर शृंगपर क्षण-भरके लिए विश्राम करने लगोगे, उस समय ऐसा जान पडेगा कि महादेवके श्वेत वृषभने कहीं कीचड़में अपनी सींगोसे जमके उखाडनेका सुख लूटा है, और अब उन सींगोमें काला कीचड़

लिपटा हुआ है। यदि यह देखना कि विशालकाय देवदारु वृक्षोंकी शाखाओके संघर्षसे उत्पन्न दावाग्निने चमरी गौओकी सुन्दर पुच्छोको झुलसा दिया है और इस प्रकार वह हिमालयको पीडा पहुँचा रही है, तो सहस्रधार होकर बरस जाना। तुम्हे इस प्रकार पीडा पहुँचानेवाले दावानलको अवश्य शान्त कर देना चाहिए। सज्जनोके पास जब सम्पत्ति आती है, तो उसका एक ही फल होता है—दुखित जनोके दुःखका निवारण। यदि विपत्ति-ग्रस्त लोगोंको विपत्तिसे बचाया न जा सके, तो सम्पत्तिका मूल्य ही क्या है? जड़-सम्पत्ति संचित होकर केवल विकारकी सृष्टि करती हैं; किन्तु विपत्ति-ग्रस्त लोगोकी सेवामें नियोजित होकर वह सार्थक हो जाती है। इसीलिए कहता हूँ कि उत्तम जनोकी सम्पत्तिका एक ही फल है—दुखित जनोका दु.ख-निवारण। तुम्हारे पास जो जल-धाराकी सम्पत्ति है, उसका भी यही उपयोग होना चाहिए। मित्र! हिमालयमे लगी हुई दावाग्निको धारासार वर्षाके द्वारा शमन करना तुम्हारा कर्तव्य है।

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययासौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासंगमेवाभिरामा ॥ ५१ ॥

आसीनाना सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एवं प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम् ॥ ५२ ॥

यदि तुम्हारे गर्जनको न सहकर क्रोधसे उन्मत्त होकर शरभ नामक हिरण उछल-कूद मचावें और तुम्हारे मार्गमें बाधा उपस्थित करें, तो उन्हें उचित दण्ड देना। हिमालयके वन-प्रदेशमें रहनेवाले ये मृग बड़े चचल होते है। मेघ-गर्जनसे क्रुद्ध होकर जब ये कूदने लगते हैं, तो इस बातका भी ध्यान नहीं रखते हैं कि उछल-कूदसे उन्हींका अग-भंग होगा। ये तुम्हारा मार्ग तो क्या रोक सकेंगे, लेकिन जब ये झुण्डके झुण्ड निकलकर वेगपूर्वक कूदने और दौडने लगेंगे, तो कठिनाई अवश्य उत्पन्न कर देंगे। ओले गिराकर उन्हें तुम तितर-बितर कर देना। इस प्रकारके निष्फल प्रयत्न करनेवालोको परिभव नहीं मिलेगा, तो और क्या मिलेगा? अपनी शक्तिको न समझकर बड़ोंकी मर्यादा लाँघनेकी हिमाकत करनेवाले इसी प्रकार अपमानित होते हैं।

तं चेद्वायौ सरति सरसस्कन्धसंघट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीवालभारो दवाग्निः।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाःसंपदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५३ ॥
ये सरम्भोत्पतनरभसाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मि-
न्मुक्ताध्वानं सपदि शरभा लङ्घयेयुर्भवन्तम्।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिपातावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥ ५४ ॥

हिमालयका यह प्रदेश भगवान् शंकरके संचारसे अत्यन्त पवित्र हो गया है। यहाँकी एक शिला तो उनके चरणोंसे

निश्चित रूपसे चिह्नित है। सिद्ध-जन नित्य इसकी पूजा किया करते है। जब तुम इस स्थानपर पहुँचना तो भक्ति-नम्र होकर उसकी प्रदक्षिणा अवश्य कर लेना। हिमालयकी भूमिमे विचरण करनेवाले सिद्ध लोगोने मन्त्र-तंत्र-योगका बहुत प्रचार कर रखा है, किन्तु उनमे भक्तिका अभाव है। भगवान् शकरके प्रति जिन लोगोकी श्रद्धा है और उनके ऊपर जिनका अखण्ड विश्वास है, वे ही शाश्वत पदके अधिकारी है। इसके दो करण है, बाह्यकरण और अन्त.करण। मनुष्य जब तक अपनी बुद्धिपर भरोसा रखता है, तब तक वह अशाश्वत और शाश्वत तत्त्वोका भेद भुला नहीं पाता। बाह्य करणोके प्रति अनास्था होनेके बाद भी वह अन्तःकरणोंको अर्थात् मन, बुद्धि इत्यादिको कसके पकड़े रहता है। वह समझता है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि शत्रु उसके पीछे पडे हुए हैं, इनका उच्छेद किए बिना वह शान्तिकी साँस नहीं ले सकता। कष्टसाध्य तपस्याओके द्वारा और कठिन योग-क्रियाओके द्वारा वह अपने अन्तःकरणके विकारोको मारनेका प्रयत्न करता है। लेकिन ये विकार क्षीण होकर भी जीवित रह जाते हैं और जरा भी शिथिलता आई कि धर दबोचते है। मैं मानता हूँ मित्र, कि अन्त.करणके इन विकारोका उन्मूलन करनेका प्रयत्न ही व्यर्थ है। ये तो हमारे अन्तरात्माके सीमा-बद्ध होनेके लक्षण है। विद्या, कला, राग, काल और नियति—मायाके इन पाँच कचुकोसे कचुकित शिव ही जीव-रूपमे प्रकट हुआ है। जब तक जीव ‘ जीव ’ है, तब तक न तो वह इन विकारोसे मुक्त हो सकता है और न इन विकारोको असत्य कहा जा सकता है। ये सभी जीवके अपने सत्य है। इनके पाप-आकर्षणसे

भीत नहीं होना चाहिए। श्रद्धा और भक्तिके द्वारा इनकी वृत्तिको जड विकारोकी ओरसे हटाकर चिन्मय तत्त्वकी ओर उन्मुख कर देना चाहिए। जड-विषयक रतिको चिद्विषया बना देनेके सिवा भक्तिका कोई और मतलब नहीं होता। जो रति पुत्र, दारा और धनादिके प्रति है, उसे समस्त चराचरके मूलमे स्थित चिदानन्दमय महासत्यकी ओर उन्मुख कर देनेका नाम ही भक्ति है। उस समय अन्तःकरणके विकारोको सुखा देने या नष्ट कर देनेका प्रयत्न नहीं होता, बल्कि अन्तःकरणको दूसरी ओर फेर देनेका प्रयत्न होता है। मनुष्यके लिए यह मार्ग सहज और स्वाभाविक है। श्रद्धावान होकर जीव अपने-आपको ही पा जाता है। अन्तःकरणके इस अन्यमुखीकरणको मैं 'करण-विगम' कहता हूँ—'करणविगम' अर्थात् 'करणो' को दूसरी ओर मोड़ देना। एक बार यदि समस्त अन्तःकरणकी प्रवृत्तियो और बाह्य करणोकी प्रचेष्टाओको चिद्घन-विग्रह महादेवके चरणोमे केन्द्रित किया जा सके, तो समस्त पाप और कल्मष स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं और उस महादेवके शाश्वत अनुचर होनेका सौभाग्य प्राप्त कर लिया जाता है। इसलिए महादेवके चरण-न्याससे पवित्र शिलापट्टको भक्ति-भावसे प्रणाम करनेके बाद तुम महादेवके प्रति श्रद्धा न खोओगे और उस फलको प्राप्त करोगे जिससे बढ़कर कोई दूसरी चरितार्थता नहीं।

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः।
यस्मिन्दृष्टे करणविगमादूर्ध्वमुद्धूतपापाः
संकल्पन्ते स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥ ५५ ॥

देखो भाई, हिमालयपर कीचक जातिके बाँस पाए जाते है जो वायुसे पूर्ण होकर मधुर ध्वनि किया करते है। वहीं किन्नर युवतियॉ सम्मिलित भावसे त्रिपुर-विजयका गान भी करती है। इसी प्रकार स्वाभाविक वेणु-निनादके साथ कलकंठी किन्नरियोका गान चलता रहता है। कमी केवल मुरज वाद्यकी—रह जाती है। यदि उस प्रदेशकी कदराओमे तुम्हारा गर्जन ध्वनित हो उठे, तो भगवान् शकरके संगीतका जो अंग अपूर्ण रह गया है, वह पूर्ण हो जाएगा। ऐसा सौभाग्य किसे मिलता है? कीचक-वेणुओकी अयत्न-साधित मधुर वंशी-ध्वनि और तुम्हारे मधुर गर्जनोसे प्रतिध्वनित गिरि-कदराओसे निकलनेवाली मृदंग-ध्वनि, और इन दोनोके साथ ताल मिलाती हुई किन्नर-वधूओकी कठ-ध्वनि। तुम्हारे इस मनोहर सौभाग्यकी वलिहारी है, मित्र!

हिमालयके तट-प्रदेशके जो भी दर्शनीय स्थान हैं, उन्हे तुम देख लेना; मगर जल्दी करना। यथासंभव एक उडानमे इन सुन्दर स्थलोको देखकर आगे वढ़ना। आगे तुम्हें हंस-द्वार मिलेगा। इसी मार्गसे प्रतिवर्ष सहस्रो हंस, कारंडव और क्रौंच पक्षी उत्तर कुरु पर्वत तक उडकर जाते है। कहते हैं कि किसी समय शिवजीसे अस्त्रविद्या सीखते समय परशुरामजीने स्कन्दके साथ प्रतियोगिता करके एक वाणमे क्रौंच पर्वतको इस प्रकार छेद डाला था, जैसे वह मिट्टीका ढेला हो। तवसे यह क्रौंच-रध्र परशुरामजीके यशका मार्ग ही वन गया। इसी मार्गसे उत्तरकी ओर प्रस्थान करना। जव उस समय तिरछी उड़ान लेकर उडोगे, तो ऐसा जान पडेगा कि वलिको नियमन करनेके लिए त्रिविक्रमरूप-धारी विष्णुके श्याम

चरण ही शोभित हो रहे हैं। विष्णुने भी तिर्यक् गतिके कारण इसी प्रकारका तिरछा पादन्यास किया था।

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संसक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः।
निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत्कन्दरेषु ध्वनिस्या-
त्संगीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः॥ ५६॥
प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान्विशेषा-
न्हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम्।
तेनोदीचीं दिशमनसुरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यतस्येव विष्णोः॥ ५७॥

इस तिरश्चीन उड्डानके द्वारा ऊपर उडकर तुम एकदम कैलासके अतिथि हो जाओगे—कैलास, जिसकी सानुदेशकी संधियाँ दस-मुखवाले रावणकी बीसों भुजाओसे झकझोर डाली गई थीं, जिसकी स्फटिक-निर्मल चोटियाँ देवागनाओंके दर्पणका काम करती हैं, और जिसकी कुमुदके समान स्वच्छ ऊँची चोटियाँ आसमानमें व्याप्त होकर इस प्रकार स्थित हैं, मानो त्रिनयन महादेव ताण्डव-कालमें जो अट्टहास करते हैं, वह प्रतिदिन संचित होता हुआ इस प्रकार पुंजीभूत हो गया है। इस महान् कैलासको देखकर तुम्हारे चित्तमें गरिमा-जन्य श्रद्धा और समृद्धि-जन्य कौतहल एक ही साथ उदित होंगे।

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसंधेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः।

शृङ्गोच्छ्रायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥ ५८ ॥

यक्षकी कल्पना-प्रवण ऑखोने शुभ्र कैलसके ऊपर उडते हुए मेघको देखा। कैसी अपूर्व शोभा थी वह! मेघकी श्यामल कान्ति ऐसी दिखाई दे रही थी, जैसे यत्नपूर्वक मर्दित स्निग्ध ऑजनमे निखर आई हुई आश्यामल कान्ति हो। जब अंजन कांस्य पात्रपर रखे हुए नवनीतमें मिलाकर देर तक मर्दित किया जाता है, तो उसमे एक प्रकारकी स्निग्धमेदुर श्यामल कान्ति निखर आती है जो गाढ़ कज्जलके वर्णसे थोडी हलकी होती है। आषाढ़के प्रथम जलधरमें वैसी ही मोहन कान्ति पाई जाती है। यक्ष कल्पनाकी ऑखोंसे देख रहा है कि हाथीके दाँतके समान शुक्ल वर्णके पर्वत-शृंगपर स्निग्ध भिन्नाजन कान्तिवाला मेघ छाया हुआ है। बलिहारी है उस मनोहर छविकी! ऐसा जान पडता है कि गौर वर्णके प्रियदर्शन बलरामजी अपने कधोपर कोई काला उत्तरीय धारण करके खडे हैं। आहा, यह शोभा तो 'स्तिमित' नयनोसे देखने योग्य है! यक्षकी कल्पनाशील ऑखोमे यह मनोहर दृश्य रंगा-सा रह गया।

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य।
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥ ५९ ॥

कैलास पर्वत हर-गौरीका क्रीडा-निकेतन है। 'शंभु-रहस्य' में बताया गया है कि चार पर्वतोको शिवजीकी क्रीड़ाके लिए बनाया गया—कैलास, सुमेरु, मन्दर और गंधमादन। उनमें भी कैलास शिवजीका सबसे प्रिय क्रीड़ा-शैल है। यहीं शिव और पार्वतीका नित्य-विहार चलता रहता है। निखिल ब्रह्माण्डमें व्याप्त शिव और शक्तिकी जो रहस्यमयी लीला लोक-चक्षुसे अगोचर होकर निरन्तर चल रही है, वही यहाँ प्रत्यक्ष विग्रह धारण करके भक्त जनोको स्पष्ट दिखाई देती है। यहाँ प्रत्येक पिंडमें चलनेवाली शिव और शक्तिकी वह लीला, जो मनोविकारोंके रूपमें अपूर्णतासे पूर्णताकी ओर जानेके इंगित रूपमें प्रत्यक्ष हो रही है। असभव नहीं कि जब मेघ वहाँ पहुँचे उसी समय शिवजी अपने सर्पोंके ककनका परित्याग करके गौरीका हाथ पकड़कर इस कैलास पर्वतपर घूम रहे हो। यह भी सभव है कि उस समय वे दोनो ही पैदल चंक्रमणके लिए निकल पड़े हों। यदि शिवका करावलम्ब पाकर गौरी लीलापूर्वक उस क्रीडा-शैलपर विचरण कर रही हो, तो मेघका क्या कर्तव्य होता है? पर्वत-श्रेणियोमें उतरने चढनेमें उनको कष्ट होता होगा। "देखो मित्र, यह तुम्हारे लिए बहुत ही उपयुक्त अवसर होगा। उस समय तुम अपनी जल-राशिको भीतर ही रोककर अपने वाष्प-निर्मित शरीरको जरा कडा बना लेना और अपने शरीरको इस भंगिमामे रचित करना कि वह सीढ़ी जैसा बन जाय। तुम इन्द्र देवताके कामरूप अनुचर हो, तुम्हारे लिए असम्भव क्या है? अपने अंगोको इस प्रकार मोड़ना कि मणितटपर चढनेवाली गौरीके लिए सोपान बन जाय। इससे बढकर जीवनको चरितार्थ करनेका अवसर तुम्हे कहाँ मिलेगा मित्र? हर-पार्वतीके चरणोंसे पवित्र होनेका अवसर कितने बडभागियोको मिलता है।"

हित्वा तस्मिन्भुजगवलयं शंभुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पादचारेण गौरी।

भङ्गीभक्त्या विरचितवपुःस्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं कुरु मणितटारोहणायाऽग्रयायी ॥ ६० ॥

एक खतरा भी है। कौतुकशीला देवांगनाएँ उस क्रीडा-शैलपर अपने कंकणोमे लगे हुए हीरोकी नोकसे तुम्हारे शरीरको वेध-वेधकर जलधारा भी निकालनेका प्रयत्न करेंगी। तकलीफ तो तुम्हे होगी ही, लेकिन सुरयुवतियोके इस विनोदसे तुम यंत्रधारा-गृहके समान बन जाओगे। बड़े रईसोके घरमें अनेक यत्नके द्वारा जो यंत्र-धारा-गृह बनाए जाते हैं, वे वहाँ अनायास बन जाएँगे। वे छोड़ भी कैसे सकती हैं दोस्त! इतनी गर्मीके बाद वे तुम्हे पाई रहेंगी। मेरा अनुमान है कि तुम सहज ही नहीं छूट पाओगे। भगवान् जाने, तुम छूटना चाहोगे भी या नहीं! लेकिन काम तो तुम्हे मेरा करना ही पड़ेगा। यदि उनसे छुटकारा न मिले, तो मै तुम्हे उपाय भी बताए देता हूँ। इन क्रीडा-चचल युवतियोसे बचनेका एक उपाय है। उन्हे जरा श्रवण-परुष डरावने गर्जनसे भयभीत बना देना। इन भय-त्रस्त तरुणियोका भागना भी तुम्हे कम पसन्द नहीं आएगा। बस अब तुरन्त आगे बढ़ जाना।

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम्।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे घर्मलब्धस्य न स्यात्
क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भीषयेस्ताः ॥ ६१ ॥

फिर तो तुम स्वर्ण-कमलोंको उत्पन्न करनेवाले मान-सरोवरका जल पीना और ऐरावतके मुँहपर इस प्रकार छा जाना कि माल्रूम हो किसीने उसे 'मुख-पट' से सज्जित किया है, और फिर कल्पद्रुमके उन पल्लवोंको, जो झीने वस्त्रोंके समान शोभित हो रहे हो, कॅपा देना, और इस प्रकार अनेक प्रकारकी ललित क्रीडाओके द्वारा मन वहलाते हुए उस पर्वतराज कैलासमे प्रवेश करना। तुम कामचारी हो, उस कैलास पर्वतकी गोदमे अलका उसी प्रकार बैठी हुई है, जैसे अपने प्रणयीकी गोदमें कोई ऐसी सुन्दरी विराज रही हो, जिसका दुकूलपट्ट शिथिल होकर दूसरी ओर सरक गया हो। यह तुम्हे बतानेकी जरूरत नही होगी कि वही अलकापुरी है। तुम्हारे जैसे निपुण कामचारीके लिए उसे देखकर पहचान न पाना असंभव बात है। सतमंजिले मकानोंसे भरी हुई यह अलकापुरी वर्षा-कालमें मेघमालाको उसी प्रकार धारण करती है, जैसे कोई कामिनी मुक्ता-जलग्रथित अलकोको धारण करती है।

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।
धुन्वन्कल्पद्रुमकिसलयान्यंशुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलद ललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६२ ॥

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम् ॥ ६३ ॥



उत्तर मेघ

अथ अलका । अब रास्ता बतानेकी जरूरत नही । मेघ—विरह-व्याकुल प्रियतमका सदेशहर मेघ—अब गन्तव्य स्थान तक पहुँच जायगा ! यक्ष सोचने लगा, यह वह काल है जब, मर्त्यलोकमें प्रबल वायुसे आध्मात होकर महिषके समान नीलकान्तिको धारण करनेवाले जलधर झमाझम बरस रहे हैं, चचल विद्युलता रह-रहकर कौध उठती है, और आसमानसे बरसती हुई वारिधाराको क्षण भरके लिए उज्ज्वल दीप्तिसे देदीप्यमान कर देती है । पृथ्वीपर नये-नये हरित कान्तिवाले तृण-शाद्वल आनन्दोल्लासमें आसमानको छूनेका प्रयत्न करना चाह रहे हैं और ऐसा जान पडता है कि क्रुद्ध जलधर इस स्पर्धाको सहन नही कर पा रहे है और मणिमय बाणोकी अन्धाधुन्ध वर्षा करके पृथ्वीके वक्ष.स्थलको शीर्ण-विदीर्ण करने पर तुले हुए हैं । आकाशमें विचरण करनेवाले पक्षी भी क्रुद्ध जलधरोके इस अभियानमे सहायक सिद्ध हो रहे हैं । रंगीन-बर्हभारसे मतवाले बने मयूर विकट केका-ध्वनिके साथ बादलोको बढावा दे रहे हैं । आसमानमें अपना एकमात्र अधिकार माननेवाली बलाकाएँ चीत्कार करके मेघोको ललकार रही है और कमल पत्रोका आसन छोड़कर आकाशमें सोल्लास भागती हुई हंसोकी पंक्ति आनन्दोद्गारके साथ

जयध्वनि कर रही ह । मर्त्यलोकमें क्रुद्ध जलधरोंने कुहराम मचा रखा है; लेकिन अलका अभी शान्त है । अब भी वहाँ प्रथम मेघका दर्शन नहीं हुआ है, अब भी वहाँकी कमलिनियाँ अनुद्विग्न है, अब भी वहाँकी मरकत सोपानवाली वापियोमे स्फटिकके समान स्वच्छ जल शान्त और स्थिर है, अब भी मन्दाकिनीकी तीव्र धारा भीषण आवर्तोंसे सकुल नहीं हुई है, अब भी वहाँके गिरि-शिखर ढूँसा मारनेवाले महावृषभकी सींग पर लगे हुए पंकके समान धूसर कान्ति नहीं धारण कर पाए हैं ।

आठ महीने बाद आज पहली बार मेघ अलकापुरीमें पहुँचा है । अलका, कैलासकी मोहिनी प्रियतमा, प्रकृति सुन्दरीकी कुञ्चित अलकावली, सौन्दर्य लक्ष्मीके भालपट्टपर शोभित होने वाली कस्तूरीकी बिन्दी ! बीहड़ अरण्यो और दुर्गम शैल-प्रान्तरोको पार करता हुआ, शानदार नगरो और मनोहर उद्यानोंको धन्य करता हुआ, उत्तुङ्ग शैल-शिखरों और अभ्रंकष सौध शृङ्गोपर विश्राम करता हुआ, देव-मूर्त्तियो और देव-तीर्थोंके दर्शनसे कृतार्थ होता हुआ मेघ थके-माँदे तीर्थ-यात्रीकी भाँति मार्गकी सारी क्लान्तिको भूलकर अपने गन्तव्य स्थानपर आ पहुँचा है । यक्षके उत्कठा-कातर चित्तमें बार-बार यह आशका हो रही है कि, यह मेघ अलकाके महत्त्वको ठीक-ठीक समझ सकेगा कि नहीं । अपनी प्रिय वास-भूमिको नित्य निवास करनेवाला व्यक्ति जितने गौरवके साथ देखता है उतना क्या अजनबी अनुभव कर सकता है ? प्रेम और आदर परिचयसे उत्पन्न होते हैं । जिसे पहचाना ही नहीं उसके प्रति प्रेम कैसा और उसके गौरवके सम्बन्धमें आदर भी कैसा ? फिर मर्त्य लोकका प्रेमी

यह मेघ उस देवपुरीको क्या समझ सकेगा, जिसके बारेमें यहाँ अनेक प्रकारकी ऊल-जलूल कल्पनाएँ प्रचलित है। मर्त्य लोकके भोले लोग यह विश्वास करते है कि इस देव-पुरीके निवासियोकी ऑखोसे पीडा और वेदनाके ऑसू निकलते ही नही। अश्वत्थकी सुकुमार टहनीसे जब उसका सूखा हुआ जीर्ण-पत्र चुप-चाप खिसक जाता है तो विशाल अश्वत्थको जितनी हल्की वेदना होती है उतनी हलकी वेदना भी देव-लोकके निवासियोमे नहीं दिखाई देती। हाय! हाय! वह लोक कितना नीरस और भोडा होता होगा, जहॉ विरह-वेदनाके ऑसू निकलते ही नहीं, और प्रिय-वियोगकी कल्पनासे जहॉ हृदयमे ऐसी टीस पैदा ही नही होती, जिसे शब्दोमे व्यक्त न किया जा सके। यक्ष आज हृदयके अतल गाभीर्यसे अनुभव कर रहा है कि जहॉ विरहकी व्यथा नहीं है वहॉ सरस हृदयका दुर्ललित प्रेम भी नहीं है। ऑसूमें जीवन तरंगित होता रहता है। पीडामे प्रेम पनपा करता है। कहीं ऐसा न हो कि यह भाग्यहीन मेघ उन्ही भोडी कल्पनाओसे रंगी हुई दृष्टिसे अलकाको परखने लगे। अलकामे यदि ऑसू नहीं हैं तो यक्षके हृदयकी यह सारी पीडा मृगमरीचिकासे अधिक मूल्य नहीं रखती। ये सारे प्रेमोद्गार सारी अभिलाप-कातर उत्सुकता और सम्पूर्ण वेदना आडम्बर मात्र है।

अनुभयानिष्ठा रति रसाभास है। छायाके पीछे दौडना थोथा पागलपन है। परन्तु यक्ष जानता है कि यद्यपि अलका देवपुरी है, मर्त्यलोककी तुलनामें वहॉ अनेक विशेपताएँ है और उन विशेपताओंको देखकर मर्त्यलोकके क्षणभगुर जीवन धारण करनेवाले प्राणियोमें उद्भट कल्पनाओका तरंगित हो उठना स्वभाविक है; तथापि यह कहना कि वहाँ प्रिय-विरहका संताप ही नहीं है,

मिलनोत्कंठाका उत्कंप ही नहीं है, विरह-विधुर चित्तका विक्षोभ ही नहीं है, सत्यका अपलाप मात्र है। मेघको ठीक-ठीक समझा देना चाहिए कि अलका क्या है और क्या नहीं है।

इसी समय यक्षने देखा कि मेघमे अचानक विद्युल्लताका प्रकाश चमक उठा है। जान पडा ऐरावतके उदर-देशमे बँधी सुवर्ण-रज्जु ही उद्भासित हो उठी है या क्षणभरके लिए रामगिरिके शिखर देश-पर स्वच्छ रेशमकी पताका फहरा उठी है। यह शुभ-लक्षण है। अलकाकी बात आते ही मेघके वक्षस्थलपर उल्लसित होनेवाली यह आनन्दज्योति अलकाके हर्म्योंमे विराजित होनेवाली मणि-दीपावलीकी उज्ज्वल रेखाकी भाँति दीप्त होकर भावी मंगलकी सूचना दे रही है। जो काम सिद्ध होनेवाला होता है उसमे ऐसे ही चिह्न प्रकट होते हैं। यह बिजलीका कौंधना सूचित करता है कि काम बननेवाला है। आशा बडी दुरत्यय वस्तु है। कहाँ रामगिरिपर निवास करनेवाला विरही यक्षका विद्युद्धारी मेघ और कहाँ अलकाके सौधोमे विराजित होनेवाली मणि-प्रदीपोकी अभिराम आभा! लेकिन यक्षके चित्तमे आशा सचरित हो गई। क्यो ऐसा होता है? जिन वस्तुओसे अभिलषित पदार्थका रंचमात्र भी साम्य होता है वे हृदय-स्थित भाव-राशिमे इस-प्रकार ज्वार क्यों उठा देती हैं? क्या समस्त जड-चेतनमें व्याप्त कोई अन्तर्निहित चैतन्य-धारा प्रवाहित हो रही है जो मनुष्यके चित्तको निरन्तर उद्वेलित और उद्वेजित करती रहती है। यक्षके चित्तमें बिजलीकी इस कौंधने कल्पनाके महा समुद्रको मानो उद्वेल कर दिया। यह मेघ अलकाके समान ही तो है जिसे देखकर प्रियाकी प्रिय-निवासभूमिकी कल्पना अनायास बाँध तोड़कर प्रवाहित हो उठती है, वह निस्संदेह प्रेमी है। यक्षने कृतज्ञतासे मेघको देखा। उसका चित्त रागसे उत्क्षिप्त हो उठा।

मर्त्यवासियोकी भॉति उसके भी चित्तमे अलकाकी मनोहारिणी छटा रंगीन होकर प्रकट हुई । बोला—

मेरे प्यारे मित्र, अलकापुरी कैलासकी मनोरमा प्रियतमा है। इस पुरीको देखकर तुम्हें सचमुच आनन्द आएगा। सच पूछो तो तुम्हारे इस 'नयन-सुभग' रूपका यदि कहीं साम्य है तो केवल अलकापुरीके रम्य प्रासादोमें ही। यदि तुम्हारे शरीरमें चचल विद्युल्लताका निवास है तो अलकापुरीमे वैसी ही हेम-कान्तिवाली ललित वनिताओका निवास है। तुम्हारे पास मनोमोहक सतरंगा धनुष है तो अलकापुरीके इन प्रासादोंमें रंग-विरंगके चित्र भी आलिखित है। अलकापुरीमे शायद ही ऐसा कोई प्रासाद हो, जिसमे विविध प्रकारके भित्ति-चित्र और कल्प-वल्लियॉ न अंकित हो। कभी-कभी अन्त पुरकी छतोमे चित्रित कल्प-वल्ली ऐसी मनोहर और चौंका देनेवाली होती है कि जान पडता है अन्तःपुरिकाओके सौन्दर्यको देखनेके लिए सारा देव-मंडल ही सिमटकर आ गया है। इन नयनाभिराम रंग-विरंगे चित्रोके साथ तुम्हारे हृदय-देशमे विराजमान-नयनाभिराम इन्द्रधनुषकी तुलना आसानीसे की जा सकती है। और यह जो तुम्हारा श्रवणसुभग गर्जन है, जो जनपद वधुओके चित्तमें आशा और नागर रमणियोके चित्तमे उत्कठाका भाव जागृत करता रहता है, अलकाके प्रासादोमे निरतर ध्वनित होते रहनेवाले मृदंगोके साथ सहज ही तुलनीय हो सकता है। फिर, तुम्हारे सर्वांगमे व्याप्त यह जो नील जल-राशिकी श्यामल कान्ति दर्शकके चित्त और प्राणको मुग्ध बना देती है, वह भी अलकाके उत्तुङ्ग प्रासादोंमें नितान्त दुर्लभ नहीं है। इन प्रासादोकी कुट्टिम भूमियॉ नीलमसे बनी

हुई हैं जो इसी प्रकारकी मसृण-मेदुर नीली प्रभा बखेरती रहती है और ऊँचाईमे तो जिस प्रकार तुम हो उसी प्रकार ये भवन भी हैं। तुम दोनोके शिखर आसमानको खरोचते रहते हैं; इसीलिए कहता हूँ मित्र कि, अलकापुरीके प्रासाद सब प्रकारसे तुम्हारे ही समान है !—

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वा तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ १ ॥

अलकापुरीकी बधुएँ हाथमे लीला-कमल-धारण किए रहती है। मर्त्यलोकमे महीयसी राजबालाओके हाथमे लीला-कमल दे देना रूढि बन गया है। पद्मका पुष्प स्त्रीको पद्मिनी समझनेमे सहायक होता है। 'पद्मिनी' अर्थात् स्त्री-शोभाका सर्वोत्तम अधिष्ठान। यह बडी मोहक कल्पना है मित्र। मैंने पहले ही कहा है कि महामायाकी त्रिजगन्मनोहरा शोभाके सर्वोत्तम अधिष्ठान दो ही है—नारी और कमलपुष्प। अलकामें दोनो अपने सर्वोत्तम रूपमे प्राप्त होते है। वहाँकी सुन्दरियाँ अपने मनोहर केशजालमे ताजे कुन्द पुष्पोको ग्रथित करती है और मुख-मडलपर श्री या ओप लानेके लिए लोध्र-पुष्पोके पराग-चूर्णोका व्यवहार करती हैं। वे चूडामे नवीन कुरबक पुष्पको धारण करती हैं, कानमें आगड-विलवि-केशर शिरीष पुष्पोंको धारण करती हैं और तुम्हारे आगमनकी सूचना मात्रसे उल्लसित हो जानेवाले कदंबके केशर-प्रसरवाले पुष्पोको सीमन्तके अग्रभागमें लटका लिया करती हैं। तुम्हे सुनकर आश्चर्य होगा मित्र,

कि ये सभी फूल एक ही समय कैसे मिल जाते है, परन्तु अलका विचित्र पुरी है। वहॉ सब ऋतुओके फूल सब समय खिले रहते हैं।

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं-
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्री. ।
चूडापाशे नवकुरवकं चारु कर्णे शिरीष
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ २ ॥

लोग ऐसा समझते है कि इस पुरीमे ऐसे बहुत-से वृक्ष मिलेंगे, जो मत्त भ्रमरोके गुंजारसे सदा मुखरित बने रहते हैं क्योंकि उनमें सदा-सर्वदा पुष्प लगे रहते हैं, फिर, यहॉकी कमलिनियोंमें नित्य ही कमल खिले रहते है और नित्य हंस-श्रेणीसे घिरी रहनेके कारण ऐसा लगता है कि ये कमलिनियॉ हंस-श्रेणीकी ही करधनी धारण किए हुए हैं। साधारणत: मयूर मेघ-मालाको देखकर मत्त होते हैं और अपनी मधुर केकासे उसका स्वागत करते है, परन्तु अलका-पुरीकी यह विशेषता बताई जाती है कि यहॉके घरोके पालतू मोर जो क्रीडा-पर्वतोपर विचरण किया करते हैं और सुदरियोके कंकण-वलयकी ध्वनिसे भी बोल पडते है, नित्य चमकीले और मनोहर बर्ह (मयूर-पिच्छ) से सुशोभित रहते हैं। और तो और, यह भी कहा जाता है कि अलकापुरीमे नित्य ज्योत्स्ना बनी रहती है। इसीलिए वहॉका सध्याकाल उतना अधकारमय नहीं होता, जितना अन्य स्थानोमे कृष्ण-पक्षमे हो जाया करता है।—

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखरा: पादपा नित्यपुष्पा
हंसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्य: ।

केकोत्कंठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापाः
नित्यज्योत्स्नाप्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥

यहाँतक तो फिर भी ठीक हैं। अलका वस्तुत प्रकृतिकी दुलारी पुरी है, वहाँ सचमुच ही नित्य वसन्त है। किन्तु ऐसा भी कहते सुना है कि इस विचित्र अलकापुरीमे किसीकी आँखोमे आँसू आते है तो केवल आनन्दोद्रेकके कारण ही, किसी अन्य दुःख-जनित हेतुसे नहीं, शरीरमे ताप अगर होता है तो केवल पुष्पोका अस्त्र धारण करनेवाले देवताके वाणोकी चोटसे ही उत्पन्न होता है जो प्रियजनके मिलनसे शान्त भी हो जाता है, प्रेमियोमे यहाँ कहीं विछोह तो होता ही नही; यदि कदाचित् कहीं हो भी जाय, तो यही समझना चाहिए कि प्रणय-कलहसे उत्पन्न यह क्षणिक वियोग है और अपार संपत्तिके मालिक इन यक्षोंके शरीरमे युवावस्थाके अतिरिक्त आर कोई अवस्था आती ही नहीं। यह यक्षपुरीकी भोडी कल्पना है। अलका इससे भिन्न ह। वहाँ प्रेम-व्याकुल हृदयोमे पीड़ा भी है, ललक भी है, वेदना भी है और उन्माद भी। यह और वात है कि वहाँ प्रकृतिके दिए हुए साधन इन मानस भावोके उतार-चढावमे विलक्षण ढगके काम करते हैं। वहाँकी स्वच्छ स्फटिक मणियोकी उपरली कुट्टिम भूमिमें नक्षत्रोकी छाया इतनी सफाईसे पडती है कि वहाँके प्रेमिक-युगल अनायास ज्योतिर्मयी छायाके पुष्पोसे चित्रित बने हुए-से स्वच्छ विस्तर पा जाते हैं, हाथसे ही तोड़ लिये जाने योग्य पुष्प-स्तवकोकी झवरीली छायाके नीचे वहाँकी कुकुम-वर्ण किशोरियाँ मन्दाकिनीकी फुहारोसे शीतल बनी हुई मंद-मंद संचारी वायुके स्पर्शसे पुलकित होकर रत्न-वालुकाओसे

क्रीडा किया करती हैं। मर्त्यलोकमे ये सारी चीजे बहुत मूल्यवान् मानी जाती है पर अलकामे तो हर गली-कूचे मिल जाती है। यदि इन सुन्दर यक्ष-यक्षिणियोके दर्शनके लिए देवता भी व्याकुल रहा करते है तो आश्चर्य ही क्या हैं! देवलोकमे ये वस्तुएँ अलभ्य है और इन पर्वत-कन्याओंके सहज लीला-विलासमें तो पार्वतीकी सहज लीला ही मूर्तिमती हो उठी है। वक्रिम विलासके हेला-विब्वोक और कुट्टमितोसे जिन मर्त्यवासियोकी दृष्टि सहज और पवित्र सान्दर्यको समझ नही सकती, वह इन निसर्ग-कुमारिओके रूप-लावण्यके सम्बन्धमे भोडी कल्पनाएँ करने लगे तो आश्चर्य ही क्या है! अलकापुरी नैसर्गिक शोभाका अक्षय निर्झर है, जड जगत्मे भी और चेतन जगत्मे भी।—

आनन्दोत्थं नयन-सलिलं यत्र नान्यैर्निमित्ते-
नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात्।
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति[1]॥

फिर भी मेरे मित्र, अलका मर्त्यवासियोकी दृष्टिमें स्वप्नपुरी ही है। पूर्वकाल-संचित कर्मका भोग करनेवाले देव-योनिके लोग इस पुरीमे निवास करते है। इसलिए वे निरन्तर सुखोपभोगके बहुमूल्य साधनोका व्यवहार करते रहते है। उनके निवास-स्थान स्फटिक मणियोके बने होते है जिनके सहनमे स्फटिक मणियोकी ही कुट्टिम-भूमि श्वेत आस्तरणके समान फैली होती है। रातको जब

1—यह और इसके पहलेका श्लोक प्रक्षिप्त है। कई संस्कृत टीकाकारोंने इनकी टीका नहीं की है।

आसमानके नक्षत्र इस कुट्टिम-भूमिमें छायाके रूपमे प्रतिफलित होते हैं, तो ऐसा जान पड़ता है कि सफेद चादरपर किसीने सफेद फूल विछा रखे है। कहना नहीं होगा कि यह नैसर्गिक आस्तरण कभी मैला नहीं होता। मर्त्यलोकमे विछाई जानेवाली चादरो और सफेद फूलोसे इसकी तुलना नहीं की जा सकती; क्योकि मर्त्यलोककी चादरें मैली हो जाया करती हैं और फूल कुम्हला जाया करते हैं। लेकिन यह अद्‌भुत चादर न तो मैली होती है और न इसके फूल कुम्हलाते ही हैं। ऐसी चादरपर अलकापुरीके यक्ष लोग दिव्याङ्गनाओंके साथ नृत्य और संगीतका अनुभव करते हैं। और मंद-मंद भावसे ताड्यमान पुष्कर नामक बाजेकी गंभीर ध्वनि—जो वहुत कुछ तुम्हारे गर्जनके समान ही है—की पृष्ठभूमिमें नूपुरकी झंकार और ककण-वलयोके रणत्कारका रस लिया करते हैं। तुम जानते ही हो कि वहाँ कल्पवृक्ष नामका समस्त कामनाओको पूरा करनेवाला और इच्छा मात्रसे समस्त अभिलषितका दान करनेवाला अद्‌भुत वृक्ष है। मर्त्यवासियोके लिए इस वृक्षका महत्त्व समझना कठिन है। इसी कल्पवृक्षसे उद्‌भूत रति-फल नामक मदिरा भी यक्ष-प्रेमियोको अनायास प्राप्त हो जाती है। एक वार कल्पना करो मित्र, विशाल-हर्म्योंके ऑगनकी कुट्टिम भूमिपर अविराम भावसे विछी हुई तारकावलिकी छाया, दिव्य प्रेमिक-युगलोका उसपर अवस्थान और मंद-मंद भावसे गंभीर ध्वनि करनेवाले 'पुष्कर' नामक बाजोंके गभीर निर्घोषकी पृष्ठ-भूमिमें नृत्य करनेवाली अप्सराओके कंकण-वलयोका रणत्कार और नूपुर और मेखला-किंकिणियोका झणत्कार और फिर अनायास-लब्ध मादक आसवका चषक!!—

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्रीसहायाः ।
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥ ३ ॥

तुम आसानीसे समझ सकते हो मित्र, कि यह अलका नगरी कितनी मोहक है। वहाँकी कन्याएँ मन्दाकिनीके जलकी फुहारोसे ठंढी बनी हुई हवामे उसीके तटपर खड़े मंदार वृक्षोकी शीतल छायामे मुट्ठियोंमे बहुमूल्य मणियोको लेकर स्वर्ग-बालुकाओमें छिपाया करती है और उन्हें खोज निकालनेका खेल खेला करती है। यह अयत्न-लभ्य सुकुमार और बहुमूल्य क्रीडा अन्यत्र कहाँ मिल सकती है? दूर तक फैली हुई मन्दाकिनीकी पुलिन-भूमिपर जो बालुका-राशि वहाँ फैली हुई है वह सोनेके कणोसे इतनी भरी रहती है कि समूची सैकत भूमि पीली सुनहली आभासे सदा देदीप्यमान रहती है। मर्त्य-लोकमे कुछ थोड़े-से सुवण-कण बहकर आ जाते है और उनका मूल्य यहाँ बहुत अधिक माना जाता है; परन्तु अलकामें मन्दाकिनीके दोनो तटोंपर योजनो तक यह बालुका-राशि फली हुई है। जो बालिकाएँ इस सैकत भूमिपर क्रीडा करती रहती है वे रूप-रंग और आभिजात्यमें मर्त्य-लोककी श्रेष्ठ सुन्दरियोंसे भी बढकर होती है। यह न समझना कि अलकापुरीकी बालिकाओंका सौन्दर्य कृत्रिम प्रसाधनोपर अवलंबित है, वह सहज कमनीय है। उनका रूप देव-दुर्लभ है और उनका मन अनायास भावसे विचरण करनेवाले मृग-शिशुओके समान सरल और मोहक है। मर्त्यलोकमें जिन रत्नोको बहुत बहुमूल्य समझा जाता है, अलकाके

गली-कूचोंमे अनायास मिल जाते हैं। इसीलिए अलकाके विलास और समृद्धिके साधन सहज भावसे विना किसी प्रयत्नके प्राप्त होते रहते है।

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि—
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारितोष्णाः।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढैः
संक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥ ४ ॥

मजेदार वात तो यह है मित्र, कि जिन मणि-प्रदीपोकी चर्चा इस तरफके लोग परियोंकी कहानियो और पौराणिक गाथाओंमे किया करते है वे अलकापुरीकी देहलियोमे विना किसी प्रयत्नके ही पहुँच जाया करती है, क्योकि उनकी सख्या वहुत हैं और तुन्हें यह जानकर कुतूहल भी होगा और रस भी मिलेगा, कि ये रत्नमणिके प्रदीप कभी-कभी अलकाकी सुन्दरियोके लिए उलझनके विपय हो जाते हैं। जव वहॉका प्रेमिक अपने रागोत्क्षिप्त चित्तके इंगित पर अपने हाथोसे प्रियाकी वस्त्र-ग्रंथिको शिथिल करनेका प्रयास करते हैं और व्रीडा-व्याकुला प्रियतमा जव इन कभी न वुझनेवाले मणिप्रदीपोको वुझाना चाहती हैं, तो उनकी शिखापर अचानक गुलालभरी मुट्ठियोसे आक्रमण करके भी असफल हो जाती हैं क्यो कि ये कमवख्त मणि-प्रदीप न फूँकसे मरनेवाले है न गुलालके चूर्णोसे वुझनेवाले हैं। तो उन व्रीडा-व्याकुला किशोरियोकी क्या स्थिति होती होगी यह तुम आसानीसे समझ सकते हो। जो रत्न-प्रदीप निरन्तर जलकर रातमे गृहिणियोके विविध कार्योंमें सहायता किया करते हैं वे ही अवसर आनेपर उन्हें धोखा दे देते है और लज्जाकी रक्तिमाको सौगुना वढ़ा देते है—

नीवीवन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र विम्वाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु ।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ ५ ॥

मित्र, अलकापुरी एक तो यो ही वहुत ऊँचे पर्वतोपर वसी है, दूसरे वहाँके धनाधिपतियोने सतमंजिले मकान वना रखे हैं। इन सतमंजिले मकानोको 'विमान' कहा जाता है। अलकाके रसिक नागर अपने विशाल भवनोमे भित्ति-चित्र अकित करनेमे वड़ा आनन्द पाते हैं। उनकी दीवाले स्फटिक-मणिके समान स्वच्छ और दर्पणके समान उज्ज्वल है और उनपर 'सूक्ष्मरेखा-विशारद' कलाकार नाना रसोके चित्र अकित करते है। दीवालोको पहले समान करके चूनेसे मजवूत वनाया जाता है जिसपर भैसके चमडको पानीमे घोटकर और अन्य मसालोके संयोगसे वना एक विशेप द्रव्य पोता जाता है। ये कलाकार एक ऐसा 'वज्रलेप' वनाते है जो गर्म करनेपर पिघल जाता है और दीवालपर पोतनेके वाद तत्काल सूख जाता है। इस वज्रलेपमे सफेद मिट्टी या शखका चूर्ण और मिश्री मिलाकर सफेद रगकी चिकनी जमीन वनाई जाती है। रंगीन जमीन वनानेके लिए और भी मसालोका उपयोग होता है। दक्षिणी भारतमे नीलगिरिपर जिस प्रकार 'नग' नामक सफेद पत्थर होता है उसीसे मिलता-जुलता स्फटिक-चूर्ण अलकाके इर्द गिर्द प्रचुर मात्रामें पाया जाता है। अलकाके शिल्पी 'वज्रलेप'मे इन्ही चूर्णोंका प्रयोग करते है। मर्त्यलोकके कलाकार ईंटका चूर्ण, गुग्गुल, मोम, महुएका रस, मुसक, गुड़,

कुसुमका तेल और चूनेको घोंटकर उसमे दो भाग कच्चे वेलका चूर्ण मिलाते है फिर अन्दाजसे उचित मात्रामे भीतपर एक महीनेतक धीरे-धीरे पोतते हैं और इस प्रकार वज्रलेपकी भूमिको स्थायी रूपसे रंगीन वनानेका प्रयत्न करते हैं। यद्यपि अलकामें सभी प्रकारकी समृद्धि है, पर ये मामूली चीजे वहापर आसानीसे नही मिलतीं। इसीलिए वज्रलेप-की भित्तियोपर जो रंग चढ़ाए जाते है वे उतने स्थायी नहीं हो पाते। लेकिन 'अलका'के 'विद्युत् निर्माण'मे कुशल कलाकार इससे हतोत्साह नहीं होते। प्रतिवर्ष तुम्हारे जैसे सैकड़ो मेघ वायुके झोंकोंके साथ उन सतमंजिले मकानोके भीतर घुस जाते हैं और उन सुन्दर चित्रोको गीला कर देते हैं। गीला होनेसे चित्र विगड जाते हैं और अलकाके कलाकारोंको प्रतिवर्ष उन्हें फिर नया करना पड़ता है। नित्य निर्माणका जो उल्लास है उसीका स्थायित्व इन चतुर चितेरोका काम्य है। अनन्त काल-तक रंगोका वना रहना मर्त्यलोकके क्षणभंगुर चित्रकारोका काम्य हो सकता है परन्तु जिन्हे दीर्घकाल तक नित्य-नवीन रूप-सृष्टिका उल्लास प्राप्त है उन शिल्पियोकी वात ही और है! वे निर्माणके उत्साहको ही अधिक महत्त्व देते है, निर्माणके स्थायित्वको नही। तुम्हारे जैसे चपल मेघोकी विनाशकारी प्रवृत्तियोसे उन्हे नव-नव रूप निर्माणकी प्रेरणा मिलती रहती है। वे इन हरकतोसे वहुत चिंतित नहीं होते। पर जो लोग उन भवनोंमे निवास करते है, वे इस विनाश कृत्यसे क्षुव्ध होते हैं। सुंदर-मनोहर चित्रोको नवीन जलकणोसे दूषित करना वहुत अच्छी वात नही है। चपल मेघ भी उनके क्षोभको समझते है। यही कारण है कि चोरकी भाँति घरोमें घुसकर

चित्रोको नष्ट करके चोरकी भाँति दूसरी खिड़कीसे निकल जाते है। इतने ऊँचे महलोसे कूदते समय कोई भी क्षीण-जर्जर हुए विना नहीं रह सकता। परन्तु तुम्हारी जातिके लोग चतुर कलावाजकी तरह धुएँकी आकृति बनाकर भाग खडे होते हैं। इन मेघोका चोर और जारकी तरह घरमे घुस पड़ना और मार खानेकी आशकासे भाग खड़े होने की तरह निकल पडना कोई उचित काम नहीं है। इसीलिए जरा तुम्हें सावधान होकर चलना होगा। लोलुप रसिककी भाँति अगर घरमे घुस पड़े तो पिट जा सकते हो—धुएँकी शकल बनाओ तो और न बनाओ तो, जर्जर हो जाने-की आशका तो वनी ही रहेगी !

नेत्रा नीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां नवजलकणैर्दोषमुत्पाद्य सद्यः।
शंकास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्गैः—
धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ ६ ॥

लेकिन साहसमे सिद्धि वसती है। तुम्हें यदि घने वाँसकी नलिकाके आगे ताँवेके सूच्यग्र 'तिन्दुक' की जो जौ भर भीतर और जौ भर वाहर निकला रहता है, तथा उसमे लगी हुई वछडेके कानके पासके मुलायम रोमोसे वनी हुई तूलिकाकी करामात देखनी है तो साहस करना ही पडेगा। इन भवनोकी ऊपरी छतोपर वनी हुई कल्प-वल्लियाँ देखते ही वनती हैं। दीवालोके चित्र और छतोकी कल्प-वल्लियाँ इस प्रकारसे अंकित होती है कि उन्हे देखकर भ्रम होता है कि देवताओ आर मनुष्योमे जो सबसे सुंदर और स्पृहणीय

है, वे मानो अलकाकी अन्तःपुरनिवासिनियोका सान्दर्य देखनेके लिए सिमटकर एकत्र हो गए हैं। धारावाहिक लता-प्रतानोके भीतरसे अकुर और पत्रके रूपमे निकले हुए सिद्ध-विद्याधरोके चित्र इतने मनोहर होते है कि नवीन दर्शकको भ्रम हो जाता है कि लताओंकी ओटमे छिपे हुए सौन्दर्यलोलुप देवगण उचककर कुछ देखनेका प्रयास कर रहे हैं और पकड़े जानेकी आशकासे फिर उन्हीं लताओमे छिप जानेको उद्यत है। इस शोभाको विना देखे कैसे रहा जा सकता है? मर्त्यलोकमें विचरण करते समय तुमने उज्जयिनीके उत्तर प्रदेशोमे जो कल्प-वल्लियाँ देखी हैं उनमें मनुष्यकी कामनाओंके कल्पित चित्र हैं। वह अपनी ऊँची उडानके कारण आकर्षक लगते है; लेकिन अलकापुरीकी इन वल्लियोमे यथार्थ चित्र हैं और निर्माणका कौशल ही उनका मुख्य आकर्षण है। यह विचित्र वात है मित्र, कि मर्त्यलोकके कलाकारोमे अपनी कलाको अमर बना देनेकी लालसा है लेकिन अलकापुरीकी कल्प-वल्लियोंमें स्वर्गलोकमें कही न प्राप्त होनेवाली लालसाको जागरित करनेका प्रयास है। तुम दोनोका अतर समझ सकोगे, क्योंकि तुम जहाँ एक ओर भुवन-विदित पुष्करावर्तके देव-वंशमे उत्पन्न हुए हो वहीं तुमने अपने चरित्रसे यह सिद्ध कर दिया है कि अपनेको निश्शेप भावसे मिटाकर नित्य वनते रहनेवाले नव-नव रूपोंमे उत्पन्न होते रहना ही सच्ची अमरता है। अलकाके चित्रकारोको अपने शरीरके आवरणमें जो नवीनता नहीं मिलती उसे वे नित्य मिट-मिटकर वननेवाले चित्रोंमें पकड़ना चाहते हैं। इस आठ महीनेके शाप-ग्रस्त जीवनमें मैंने यह अनुभव किया है कि मर्त्यलोककी ऊर्ध्वगामिनी कल्पनाके धनी शिल्पी सचमुच धन्य हैं जिनमें लालसाका कपन है और नित्य

नवीन होते रहनेवाले मानसविकारोंका प्रसाद प्राप्त है। अमर-लोकके निवासी मूँड मारकर जिन क्षण-भंगुर वासनाओको कलाके माध्यमसे प्राप्त करनेका प्रयत्न करते है वे यहाँ कितनी सुलभ हैं! मेरे चित्तमे इस समय नित्य बनती बिगड़ती रहनेवाली लालसाओका जो हाहाकार ठोस रूपमे उपलब्ध हो रहा है, वह अमर लोकके चिर-मिलनके भारसे जर्जर शिल्पियो और शिल्प-विलासियोको कभी प्राप्त नही होता। जिस प्रेममे आँसू नहीं है, लालसाकी नित्य उमड़नेवाली आँधी नहीं है, वियोग-विधुर चित्तका क्रन्दन नही है, वह भोंडी विलासितासे रंच मात्र भी अधिक नहीं। परन्तु तुमने जीवनकी दोनो कोटियोको देखा है। तुम निरन्तर विनाशके चक्रमें पड़े रहकर 'जीवन-दान' किया करते हो, इस लिए दोनोका अन्तर आसानीसे समझ सकोगे। मै जानता हूँ कि मर्त्यलोकके निवासियोंके चित्तमे चिर-जीवी सौन्दर्य कितनी कल्पनाओंको उद्वेल करता रहता है और अमर-लोकके निवासियोंके चिर-सौन्दर्य-तृप्त चित्तमें कितना भयकर रेगिस्तान अनवरत भावसे विद्यमान रहता है। मै तुम्हे अलकाको मर्त्यलोक-निवासियोकी दृष्टिसे देखनेकी सलाह दूँगा। सतमंजिले मकानके गवाक्षद्वारसे सशंक भावसे प्रवेश करनेमें यही मर्त्यलोकवासिनी दृष्टि रहेगी। जब तक तुम इस दृष्टिसे उन भवनोके भीतर प्रियतमके भुजालिङ्गनसे उच्छ्वसित उन सुन्दरियोको नही देखोगे, जिनकी थकान खुली चाँदनीमे शैय्याके ऊपर लटकती हुई झालरदार चन्द्रकान्त मणियोंसे धीरे-धीरे टपकती बूँदोसे दूर होती है, तब तक तुम सच्चा नेत्र-सुख नही प्राप्त कर सकोगे। भुजलताओद्वारा प्राप्त आलिंगन या आश्लेषके बाद

शिथिल बनी हुई सुन्दरियोको अपने वाष्प-बिंदुओसे सिक्त करके श्रान्ति-क्लान्तिसे मुक्त करना केवल मर्त्यवासियोकी दृष्टिसे ही आनन्द-दायक होगा। नही तो अमरलोककी श्रान्ति और क्लान्ति कोई महत्त्वपूर्ण वस्तु नही है, वह तो चिर-सौन्दर्यके भारकी मामूली-सी गॉठ मात्र है। केवल भवनोमे ही नहीं कुबेरके मनोहर 'वैभ्राज' नामक वनमे भी लालसा-हीन प्रेमियोकी रससिक्त बाते केवल मर्त्यलोककी दृष्टिसे देखनेसे ही तुम्हारे सरस चित्तमे औत्सुक्यका संचार कर सकती हैं। इतना ही अच्छा है कि अलका विशुद्ध देवपुरीसे थोडा घटकर है। उसमे विलास-साधन तो सुलभ है किन्तु लालसा-लोल और अनुराग-चचल मनोविकार एकदम अप्राप्य नहीं हैं।—

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासितानां—
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः।
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः॥ ७॥
अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै—
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किंनरैर्यत्र सार्धम्।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति॥ ८॥

उज्जयिनी तो तुमने देखा है मित्र, यहॉ रातको जब प्रणयमुग्धा कामिनियॉ घने अन्धकारमें तेजीसे अभिसारयात्रापर निकलती है तो उनके केश-पाशमें सुकुमार भावसे गुँथे हुए पुष्प और किसलय खिसक कर सड़कोपर गिर जाते हैं। कानोमें लगे हुए मनोहर

सोनेके कर्ण-फूल चू पड़ते हैं और मोतियोकी माला क्वचित् कदाचित् टूटकर बिखर भी जाती है। उज्जयिनीके सहृदय नागरिक सूर्योदयके समय जब इन बिखरी हुई वस्तुओको देखते हैं तो उन्हे यह समझनेमे देर नहीं लगती कि इस मार्गसे मूर्तिमान अनुराग और औत्सुक्य निकला है। उनके सवेदन-शील हृदयोमे भी अनुराग और औत्सुक्यका कम्पन अनुभव होता है। यह विचित्र रहस्य है मित्र, कि अनुमानसे जाना हुआ अज्ञात हृदयका अनुराग किस प्रकार संवेदनशील अन्य हृदयोमें भी अकारण कम्पन उत्पन्न कर देता है। क्या यह इस बातका सबूत नहीं है कि एक ही दुलर्लित शक्ति मनुष्य मात्रके हृदयमे निवास कर रही है और रंचमात्रके इंगितसे ही वह उसी प्रकार उद्वेल हो उठती है जिस प्रकार चन्द्रमाको देखकर महासमुद्र उद्वेलित हो उठता है। कौन कह सकता है कि इन छोटी-छोटी घटनाओमे भुवन-मोहिनीका अद्वैत विलास निरन्तर उद्घाटित नहीं होता रहता। अलकाके मार्गोमे भी तेज चाल और जोरकी धड़कनका अनुमान तुम इन वस्तुओसे लगा सकते हो। तुम वहाँ साधारण पुष्पोके स्थानपर केश-पाश-स्खलित मन्दार पुष्पोको देखोगे, साधारण कर्णफूलके स्थानपर कानसे गिरे हुए कनक कमलोको देखकर चकित हो जाओगे, और हारोके टूटे हुए धागोसे बिखरी हुई महार्घ मणियोको देखकर अचरजमे पड जाओगे। परन्तु अलकामें ये वस्तुएँ दुर्लभ नहीं है। दुर्लभ है तो भीत-भीत भाव, क्षण-भंगुर लालसाओका उत्कप और अकारण त्रस्त रहनेवाली ऑखोकी लीला। बाकी सब दृश्य तुम्हे उज्जयिनीके घनान्धकारमें गुजरे हुए अनुरागसे उत्क्षिप्त हृदयोकी ही सूचना देंगे। मर्त्यवासियोकी दृष्टिसे

देखना। उन अमरोंकी ऑखोसे क्या देखोगे, जिनके पलक कभी गिरते ही नहीं! पलक लज्जाके भारसे झुकते है, उत्सुकताके आवेगसे चचल होते है और आश्चर्यके आवेशसे विचलित होते है। पलकोंकी गति मर्त्यलोकके निवासियोकी सबसे बडी निधि है। जिन पलकोमे भार नही, चाञ्चल्य नहीं और जडिमा नहीं, वे भी क्या पलक हैं? उनमे लीला-विलास तरंगित नहीं होता, औत्सुक्यके भाव उद्वेल नहीं होते और शोभाकी तरंगे लहराती नहीं। लेकिन यदि तुम मेरे समान शाप-ग्रस्त लोगोकी दृष्टिसे देखोगे या क्षण-भंगुर मर्त्यवासियोके चिरअतृप्त नयनोसे उनका रस-ग्रहण करना चाहोगे तो गत्युत्कप-वश स्खलित मंदार पुष्पोमें, कनक-कमलोमें और मुक्ताजालोमे अपूर्व कपन उत्पन्न करनेवाली वह लालसा प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होगी, जो इस लोकमें बसनेवाले प्राणियोंकी अक्षय निधि हैं और जिनमें भुवन-मोहिनीका त्रैलोक्य-मनोज्ञ रूप नित्य उद्भासित होता रहता है।—

गत्युत्कंपादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्॥९॥

मित्र, कुवेरक मित्र और पूज्य भगवान् महादेव जहाँ निवास करते है, वहॉ पहुॅचनेकी हिम्मत भौंरोकी डोरीवाले धनुष्यके अधिकारी कामदेवमें नहीं है। उसकी मधुकर-श्रेणीकी बनी हुई यह प्रत्यञ्चा वहाँ खींचनेसे पहले ही टूट जाती है। परन्तु यह गंधर्व-

पुरी कामदेवकी अपनी नगरी है, वहाँ उसे अधिक प्रयास नहीं करना पडता। वहाँकी चतुर वनिताओके विभ्रमसे ही उसका काम सिद्ध हो जाता है। चतुर वनिताओका विभ्रम, जिसमे भ्रू-भगके साथ प्रयुक्त नयन ही अमोघ अस्त्रका काम करते है। मनोजन्मा देवता भीत-भीत भावसे संचरण करता हुआ भी अपना काम अनायास बना लेता है। कहाँ मर्त्यवासियोके चित्तमे अजस्र भावसे उत्पन्न होनेवाली विविध कामनाओका चित्तोन्मथी प्रकोप और कहाँ भीत-भीत भावसे सचरण करनेवाले मनोजन्मा देवताकी कातर-साहाय्य प्रार्थना ! दोनोमे बडा अन्तर है मित्र !

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ।
सभ्रूभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥ १० ॥

मुझे आशंका हो रही है मित्र, कि तुम मेरी बातोको ठीक ठीक समझ रहे हो या नही। सौन्दर्य क्या है ? क्या शरीरमे जो शोभा-विधायक धर्म है वे अपने आपमें सौन्दर्य कहला सकते है ? शरीर-की विभिन्न अवयवोकी रेखामें जो स्पष्टता होती है उसे 'रूप' कहते हैं, आँखोंको विभिन्न प्रकारकी स्निग्धताओसे तृप्त करनेवाले रगोको 'वर्ण' कहते है, विशिष्ट प्रकारकी चमक या चाकचिक्य-से जो कान्ति झलमलाया करती है उसे 'प्रभा' कहते है, अधरोपर सहज भावसे खेलती रहनेवाली हँसीके कारण जिस धर्मसे सहृदयों-की दृष्टि आकर्पित हो जाती है उसे 'राग' कहते हैं, फूलके समान

मृदुता और कोमलताको व्यक्त करनेवाला वह गुण जो चित्तमें एक प्रकारकी स्पर्शजन्य आनन्दकी गुदगुदी उत्पन्न करता है 'आभिजात्य' कहलाता है, अङ्ग-उपाङ्गसे निरन्तर नव-यौवन-जनित उल्लाससे प्रकट होते रहनेवाली विभ्रम-विलास नामक चेष्टाएँ जिनमें कटाक्ष, भ्रूक्षेप इत्यादिका समुचित मात्रामें प्रयोग रहता है 'विलासिता' कहलाती है; चन्द्रमाकी भाँति आह्लादकारक उस मधुर स्निग्ध धर्मको जो शारीरिक अवयवोके उचित सन्निवेशसे व्यंजित होता रहता है 'लावण्य' कहते हैं, सुघड व्यवहार और परिपाटीको व्यक्त करनेवाली शोभा 'छाया' कहलाती है. वह सहज रंजक गुण ही जिससे सहृदय जन उसी प्रकार आकृष्ट होते हैं जिस प्रकार पुष्पके परिमलसे भ्रमर खिंच आते हैं, वशीकरण धर्म है जिसे 'सौभाग्य' कहते हैं। पूर्व जन्मके अनेक पुण्योके परिणामसे मर्त्यलोकवासियोमेंसे किसी-किसीको इन दसमेंसे थोडे मिलते हैं। सब कहाँ मिल पाते हैं? अलकामें ये दसो धर्म अनायास प्राप्त होते रहते हैं। मर्त्यलोकवासी इन गुणोकी न्यूनताओको उस परम पवित्र मानस संपत्तिसे उत्पन्न कर लिया करते हैं जिसे 'प्रीति' कहते हैं। 'प्रीति' का सहज धर्म है अप्राप्त गुणोको अनायास उत्पन्न कर लेना। मर्त्यलोकमें वह सुलभ है। यही इस लोककी विशेषता है। मर्त्यलोकके निवासी अनेक प्रकारके आभरणोकी योजना करके सहज-लभ्य गुणोके अभावकी पूर्ति कर लेते हैं। ये आभरण अनेक प्रकारके हैं। कुछ केशोमें पहने जाते हैं, कुछ शरीरपर धारण किए जाते हैं, कुछ वस्त्रो और अन्य बाह्य वस्तुओकी भाँति आरोप कर लिये जाते हैं और कुछ सुगंधित द्रव्योके योगसे उत्पन्न कर लिए जाते हैं। अलकामें इनके लिए

विशेष प्रयत्नकी जरूरत नहीं होती। वहाँ रंग-बिरंगे वस्त्र, नयनोमें विभ्रम उत्पन्न करनेवाली मदिरा, कोमल पत्ते तथा फूल-पौधोसे लगाये जानेवाले महावर आदि सभी प्राकृतिक साधन कल्पवृक्ष ही दे दिया करता है। मर्त्यलोकके शिल्पी इनके लिए कितना प्रयास करते है? ताटंक, कुण्डल, कर्णवलय आदि अलंकार अगोको बेध-कर पहने जाते है, इसीलिए 'आवेध्य' कहलाते है। अगद, कुकुम, श्रोणीसूत्र या करधनी, चूडामणि आदि अलकार बॉधकर पहने जाते है, इसलिए इन्हे 'निबन्धनीय' कहा जाता है। उर्मिका, मंजीर, नूपुर आदि अलकार प्रक्षेपपूर्वक पहने जाते है इसलिए 'प्रक्षेप्य' कहे जाते है। झूलती हुई मालतीमाला, पुष्प-स्तवकोके अभिराम हार, मणि-खचित नक्षत्रमालिका आदि अलंकार शरीरपर आरोपित कर लिए जाते हैं इसलिए ये 'आरोप्य' कहलाते हैं। इनके लिए कितने प्रकारके रत्न, स्वर्ण, मंडनद्रव्य और कितनी प्रकारकी शिल्प-कलाओका आविष्कार किया गया ह! जो नहीं है उसे पा लेनेकी अमर लालसा मर्त्यवासियोकी विशेपता है। किंतु जसा कि मैने तुमसे पहले ही कह रखा है, अलकापुरी विशुद्ध देव-पुरी भी नही है। वह स्वर्ग और मर्त्यके बीचकी कड़ी है। वहॉ जो लालसा ह उसकी पूर्ति अनायास ही हो जाती है। उस प्राप्तिमें आरंभ नही है, प्रयत्न नहीं है और उद्यमका उल्लास नहीं है। ऐसे ही मोहक लोकमे तुम्हे जाना है। उस कल्पवृक्षके देशमे समस्त मंडन द्रव्य अनायास प्राप्त होते रहते हैं।—

> वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
>
> पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ।
>
> लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
>
> मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥ ११ ॥

परन्तु क्या सौन्दर्य इतना ही है ? ये सब शोभाके परिकर और व्यंजक मात्र है। शोभाका मूल उत्स तो आत्मदानमें है। जहाँ अपने आपको दलित द्राक्षाकी तरह निचोडकर समर्पित कर देनेकी प्रवृत्ति नही है वहाँ कचधार्य, देहधार्य, परिधेय और विलेपन जैसे मंडन द्रव्योके निरन्तर प्राप्त होते रहने पर भी और रूप, वर्ण, प्रभा, राग, आभिजात्य, विलासिता, लावण्य, छाया और सौभाग्यके सुलभ होते रहने पर भी सच्चा सौन्दर्य नहीं बन पाता। अलकाके गली-कूचोमे बिखरे हुए रूप वर्णके अलकार और मंडन द्रव्योको देखकर तुम यह न समझ बैठना, कि यहाँ सचमुच सौन्दर्यका निवास है। सान्दर्यको देखना हो, तो तुम्हें थोडा प्रयास करना होगा, तुम्हें उस स्थानको खोजना होगा, जहाँ शाप-ग्रस्त व्यक्तिके चित्तमे निरन्तर उद्वेल होती रहनेवाली अतृप्त लालसा व्याकुल भावसे किसीकी प्रतीक्षामे सर्वस्व लौटा देनेको प्रस्तुत है। वहीं तुम्हें जाना है; वही तुम्हारा लक्ष्य है, वहीं भेजना मेरी समस्त प्रार्थनाओका उद्देश्य है। अलकामे भी तुम्हें निष्कलुप प्रेमका समुद्र लहराता दिखाई देगा, आनन्द-निष्यन्दी अश्रुराशिकी करुणाप्लावित धारा बहती मिलेगी, वियोग-विधुर चित्तके तापसे विशुद्ध बना हुआ अनुराग दमकता दिखेगा। क्योकि यहाँ भी देवताके कोपसे शाप-ग्रस्त प्रणयी मिल जाते हैं, जो मर्त्यवासियोके समानधर्मा होते है। वे सचमुच धन्य हैं।

अलकामे सबसे समृद्धिशाली भवन यक्षाधिपति कुबेरका है, उसे पहचाननेमे तुम्हे कठिनाई नहीं होगी। उसके थोडे ही उत्तरमें मेरा घर है। दूरसे ही उसका इन्द्रधनुषके समान तोरण दिखाई देता है। इस रंगीन तोरणको देखकर तुम आसानीसे उसे पहचान लोगे।

उसके पास ही एक छोटा-सा मन्दार वृक्ष है जिसे मेरी प्रियाने पुत्रवत् पाल-रखा है। तुम उसे देखते ही पहचान जाओगे, उसके झबरीले पुष्प-स्तबक धरतीपर झुके होगे। अभी बच्चा ही तो है। लेकिन क्या शानदार है उसके पुष्पस्तबककी झबरीली शोभा! हाथसे ही ये फूल प्राप्त कर लिए जा सकते है, क्योंकि बहुत ऊँचे पर नहीं खिले है। श्वेत चूर्णसे पुते हुए मोटे और चिकने हरे पत्तोकी घनी छायामे झूलते हुए बैंगनी फूलोके गुच्छोकी शोभा देखते ही बनेगी। कितने यत्नसे प्रियाने इसका लालन किया है, कितनी साधसे इसे पाला है और कितने स्नेहसे इसका सेचन किया है। स्नेह-रस ही वास्तविक शोभाका उत्पादक है। इस हस्त-प्राप्य स्तबक-नमित बाल मन्दारवृक्षको देखकर तुम मेरे घरको आसानीसे पहचान लोगे।—

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं
दूराल्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन।
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दारवृक्षः॥ १२॥

इसके भीतर एक बावड़ी है जिसकी सीढियाँ हरी-हरी मरकत मणियोसे बाँधी गई है। उसमे मार्जार नेत्रके समान कृष्ण-कपिश और चिकनी वैदूर्यमणिके मृणालवाले इतने स्वर्ण-कमल खिले होगे, कि उसका पानी दिखाई नहीं देता होगा। सुवर्ण कमलोकी घनी छायासे सारी बावड़ी ढँक-सी गई होगी। इस बावडीमें आकर बसे गए हंस सारी चिन्ता भूलकर वहाँके हो जाते हैं, निकट ही जो

उनका प्रिय गन्तव्य मानससरोवर है वहाँ जानेकी फिक्र उन्हें बिलकुल नहीं होती। तुम्हारे इस श्यामल मेदुर रूपको देखकर हंस न जाने किस दुर्वार अभिलाषासे चचल होकर मानस-सरोवरकी ओर जानेके लिए व्याकुल हो उठते हैं। तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा मित्र, कि मेरे घरकी वावडीवाले हंस तुम्हे देखकर भी मानस-सरोवरको नहीं जाना चाहेगे। शायद तुम पहली वार अपनी पराजय देखोगे, पर वुरा न मानना सखे, यह सब तुम्हारी भाभीकी अपूर्व स्नेह-सरस छायाका प्रभाव है। भुवनमोहिनी प्राणि मात्रके चित्तमें जिस सुकुमार चाञ्चल्यको नित्य उल्लसित करती रहती हैं उनका सुकुमार-तम विलास तुम्हारी भाभीके स्नेह-मेदुर हृदयमें आविर्भूत हुआ है। उस स्नेहका स्पर्श पाकर यदि हंस वेफिक्र हो गए हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? जहॉ तुम्हारे इस मनोहर नयन-सुभग रूपको देखकर भी हंस व्याकुल न हो उठे हों, वही मानस रसैक शोभन रूप है, वहीं मेरी प्रिया रहती है। इस अद्भुत चिह्नको भूल न जाना, गॉठ वॉध लो।—

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैडूर्यनालैः।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं सन्निकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः॥१३॥

उस वावड़ीके तटपर सुन्दर इन्द्रनील मणियोंसे वने हुए शिखर-वाला एक क्रीड़ा-पर्वत है जिसके चारों ओर कनक-कदलीका वेड़ा लगा हुआ है। यह क्रीड़ा-पर्वत मेरी गृहिणीको वड़ा प्यारा है और

सही तो यह है मित्र, कि जब मै तुम्हारे इस नीले शरीरके किनारो-पर बिजलीकी कौंध देखता हूँ तो कनक-कदलीसे वेष्टित नीलमके शिखरवाले उस क्रीड़ा-पर्वतकी बात ही स्मरण करने लगता हूँ। एक-एक बार तो मेरा यह चित्त इतना कातर हो उठता है कि तुम्हींको वह क्रीड़ा-पर्वत समझ लेता हूँ। रह-रहकर मेरे चित्तका यह विक्षेप मुझे पागल बना देता है। क्या मैं सचमुच पागल हो गया हूँ? तुम्हारे समान हितूको क्रीडा-पर्वत मान लेना पागलपन ही तो है। जो, जो नहीं है उसे वही समझ बैठना विक्षिप्त चित्तकी ही तो करामात है। पर विवश हूँ मित्र, मुझे क्षमा करना। तुम्हें देखकर मेरे मनमे क्रीडा-शैलका भ्रम होना बिलकुल असगत बात है, मै समझता हूँ, पर विवश हूँ। यही क्या भुवन-मोहिनीकी माया है? चित्तमे निहित भयंकर अभावको प्रतिक्षण कुहकके द्वारा, इन्द्रजालके द्वारा, भरनेकी उनकी जो क्रिया है उसे ही क्या शास्त्रकारोने 'भाव' कहा है? मेरे मनमें हर वस्तुको देखकर अभिलाप-कातर 'भाव' की तरगे उठा करती है। मै अपने 'भाव' को पहचान पाता हूँ। 'भाव' अर्थात् होना। जो मैं हूँ, जिसे पाकर मेरी सत्ता चरितार्थ होती है, वही तो मेरा 'भाव' है। क्या भुवन-मोहिनी अपनी अद्भुत कुहक-तरंगोसे मुझे नित्य बताना चाहती हैं कि मेरी चरितार्थता कहाँ है? यह अभिराम क्रीड़ा-पर्वत जिसपर प्रियाके चरणोकी मंजीर-ध्वनि मुखरित है, जिसपर उसके मृदुल-कोमल पद-संचारके समय महावरकी लालिमा तरंगित हो उठती है, जिसपर वापीमे स्नान करनेके बाद निखरी हुई उसकी अंग-शोभा अनुभावकी लहरदार धारासे कान्तिकी स्रोतस्विनी बहा देती है. हाय, यह क्या वही क्रीडा-शैल है! यहीं कहीं मेरी प्रिया—उदास

प्रिया—बैठी मेरी बाट जोह रही होगी। परन्तु नहीं मित्र, यह निरा पागलपन है, मेरा चित्त अत्यन्त कातर हो उठा है. मै तुम्हे अपने मकानका चिह्न बता रहा हूँ पर न जाने कौन-सी दुर्वार शक्ति मुझे विवश कर देती है कि मैं तुम्हें क्रीड़ा-पर्वत समझ बैठता हूँ। जरा-सी समानता देखकर जो 'मनोज'-भावना समस्त ज्ञानको अवरुद्ध कर देती है और जो, जो नहीं है, उसे उसी रूपमे उपस्थित कर देती है वह निश्चय ही व्यक्ति-चित्तमे विच्छिन्न भावसे उत्पन्न और वस्तु विशेषसे साम्यद्वारा उद्दीप्त होनेवाली खड-भावना नहीं है। धन्य हो त्रलोक्यमनोज्ञ, त्रिकाल-कमनीय मनोमोहन देवता, कितना अखण्ड है तुम्हारा व्यापक प्रभाव! मेघ जैसे मित्रको क्रीडा-शैलके रूपमें उपस्थित करनेमें तुम्हे क्षणभर भी आयास नहीं करना पड़ता, अन्तर्निहित अभिलाप-भावनामें तुम अनायास ज्वार उत्पन्न कर देते हो। कहाँ वह मेरी मानसिक अभिलाप-धाराको उद्वेल कर देनेवाला चिन्तोन्माथी क्रीडा-शैल और कहाँ यह अकारण सुहृद् मेघ। पर मित्र, बुरा न मानना, सच्चा सखा वही है जो सुहृद्के वास्तविक 'भाव' को प्रत्यक्ष करा दे, तुम्हे देखकर मैंने अपनी सत्ताकी चरम सार्थकताका रहस्य समझ लिया है। तुम क्रीडा-शैल ही हो, प्रियाके स्पर्शके कारण परम काम्य!

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः।
मद्गेहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥ १४ ॥

यक्षने अपनेको सँभालनेका प्रयत्न किया। मेघके चेहरेपर कुछ हलचल दिख रही है। क्या सोच रहा है वह! यही सोचता होगा वह कि यक्ष पागल हो गया है, इससे अधिक बात करना ठीक नही। ठीक ही तो है, यह भी कोई बात हुई, कि घरका पता बताने चले और भाव-गद्गद प्रलाप करने लगे। कौन पूछता है कि तुम्हारे चित्तमे जो कातरता है वह भुवन-मोहिनीकी अखण्ड भावसे व्याप्त इन्द्रजालकी माया है या व्यक्ति-विशेषमें खंड-विच्छिन्न भावसे उठनेवाली काम-वासना! विरही हो बाबा, तो विरहीकी तरह बात करो, बेतुकी ऊल जलूल बातोमे क्यो उलझते हो? तत्त्वज्ञकी मुद्रा क्यो धारण करते हो? सीधे क्यो नही कहते कि तुम्हारा घर कैसा है, कौन-से दरख्त है, कैसा फाटक है, कितने खभे है, उत्तर ओर है कि दक्खिनी सिरेपर? ठीक ही तो है, सदेश भेजना हो तो सीधी बाते करनी चाहिए। यक्षने व्याकुल-भावसे अपनेको धिक्कारा। अब वह ऊल-जलूल नहीं बकेगा। सीधी बात सीधी भाषामे कहेगा। हॉ मित्र, उस क्रीडा-पर्वतपर एक माधवी-मंडप है कुरबकके बेडेसे घिरा हुआ। ठीकसे समझ लो। उसमे दो छोटे-छोटे पेड हैं एक अशोकका, एक बकुलका। अशोकके पेडके चचल-किसलय बस देखने ही लायक है। पार्वत्य प्रदेशोमे यह विश्वास प्रचलित है कि अशोक सुन्दरी रमणियोके नूपुरयुक्त वाम-पादके ताडनसे और बकुल (मौलसिरी) उनकी मुख-मदिरासे सिंचकर पुष्पित हो उठते हैं। उधर वसन्तकालमे धूम-धामसे उत्सव मनाकर इन वृक्षोको फलनेके लिए प्ररोचित किया जाता है। हर घरमें सुन्दरी किशोरी चरणाघातसे अशोकको और मुख-मदिराके सेचनसे बकुलको पुष्पित करनेका अभिनय करती हैं। यह केवल छद्म है, अभिनय है, प्रथापालन

मात्र है ! खैर, और जगह क्या होता है यह तो मुझे नहीं मालूम, पर मेरे घरके ये दोनों हजरत जबतक तुम्हारी भाभीके सनूपुर चरण और मुख-मदिराका आनन्द नहीं उठा लेते तब तक फूलनेसे कतई इनकार कर देते है। पहाडोपर हजारो अशोक अनायास फूलते रहते हैं, कहाँ विचारोको लाल-लाल चरणोका स्पर्श मिलता है ! पर हमारे हजरत ऐसे लाड़ले है कि उन्हें मेरी प्रियाका स्पर्श अवश्य मिलना चाहिए। अशोक महाशय तो ऐसे दुर्ललित हैं कि पूछो नही, चरणका ताडन उन्हें अवश्य मिलना चाहिए, सो भी दाहिनेका नहीं बायें चरणका ! दाहिनेसे लग जाय तो उन्हे ज्यादा चोट लग सकती है, उससे वे नाराज हो जाते हैं। बायाँ चरण चाहिए, नूपुर अवश्य रहना चाहिए, महावर न लगी हो तो उनकी खुशामद अधूरी रह जाएगी। हल्का-सा पदाघात. नूपुरकी झीनी रुन-झुन, कौसुंभ वस्त्रकी लहरीली फरफराहट और लो, हज़रत कंधेसे ही फूट पड़ते हैं, लाल फूलोके गुच्छे झमाझम लहक उठते हैं ! यह शौकीनी है। मगर इस अशोकको दोष भी क्या दूँ, मैं भी तो उन नूपरयुक्त चरणोको गोदमें रख लेना चाहता हूँ, अशोकमें पुष्प उत्पन्न होनेके उत्सवके क्षण भर बाद ही मैं उसे गोदमें लेकर सहलाया करता था ! हाय मित्र, उन पद्म-ताम्र चरणों-की शोभा तुमने नहीं देखी, मैं व्याकुल भावसे सोच रहा हूँ कि उन्हें पाऊँ ! कहाँ पाऊँ, कैसे पाऊँ ? अशोक धन्य है, मैं भाग्य-हीन हूँ। हाय, प्रियाके उन थके चरणोंका संवाहन करनेका अवसर कब मिलेगा ?

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनास्याः ॥ १५॥

फिर प्रलाप ! मेघ कह रहा है, उसे जल्दी है। पँवारा बंद करो, सीधी बात कहो। हाँ, ठीक है मित्र, वार बार गलती हो जाती है। चित्त दुर्बल हो गया है। मेरे घरके और चिह्न भी हैं, सुन लो। ये जो दोनो वृक्ष है—अशोक और वकुल—, उनके वीच-में कच्चे बाँसके समान हरी चिकनी मणियोसे वनी एक चौकी है जिसके ऊपर स्फटिककी एक चौकोर पाटी बाँधी गई है। उस पाटीपर सोनेकी एक वास-यष्टि है जिस पर तुम्हारा सुहृद् मयूर सूर्यास्तके वाद नित्य आकर बैठता है। इस मयूरको भी तुम कम विदग्ध न समझना। भले मानसको मेरी प्रिया चूडियोकी रुन-झुनसे ही नचा देती है ! इंगुर-जैसी गोरी कलाइयोकी रंगीन चूड़ियोकी रुनझुनसे नाच उठना क्या मामूली रस-संवेदना है ? मगर क्या करोगे मित्र, तुम्हारी भाभीके स्पर्शमें ही रस है। उसने जिसे ही छू दिया, निहार दिया, छाया-दान किया, वही रसमग्न हो जाता है, वह पारसरूपा है !—

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
र्मूले वद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ।
तालैः शिञ्जावलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥ १६ ॥

इतना काफी है। इन चिह्नोको देखकर तुम मेरा घर पहचान-लोगे। द्वार पर ही शंख और पद्म लिखे दिखाई देंगे। शख अपने लहरदार आवर्त्तोंके कारण और पद्म अपने क्रमवर्द्धमान दलोकी निराली शोभाके कारण अनन्त समृद्धिके प्रतीक बन गए हैं। मेरे घरमें लिखे गए शख और पद्म आशा और विश्वासके ही निद-र्शन हैं। हर गृहस्थ शंख और पद्मकी संख्या तक पहुँचनेवाले धनकी आकांक्षा करता है, आशा रखता है, विश्वास रखता है। मिलता है कि नहीं, यह बडी बात नहीं है। गृहस्थ मंगल-कामी होता है, आशा उसकी प्रेरणा है, विश्वास उसका बल। मैंने भी अपने द्वारपर शंख और पद्म लिखवा रखे हैं। उन्हें देखते ही तुम पहचान लोगे। लेकिन सबसे बड़ा चिह्न यह है कि मेरा घर बहुत उदास दिख रहा होगा, मेरे अभावमें वहाँ उल्लास कहाँ रह गया होगा? सूर्यके बिना कही कमल खिल सकते हैं?

एभिः साधो हृदयनिहितैर्लक्षणैर्लक्षयेथा
द्वारोपान्ते लिखितवपुषौ शङ्खपद्मौ च दृष्ट्वा।
क्षामच्छायं भवनमधुना मद्वियोगेन नूनं
सूर्यापाये न खलु कमलं पुष्यति स्वामभिख्याम ॥१७॥

बस, अब देर न करना। निश्चित रूपसे यही मेरा घर है। उसी क्रीडा-पर्वतकी चोटीपर जा बैठना। लेकिन कैसे जाओगे? वाह, यह भी कोई प्रश्न है! तुम इन्द्रके कामरूप अनुचर हो, जैसा चाहो वैसा ही रूप धारण कर सकते हो, इसमें तुम्हें क्या सोचना है, झटसे हाथीके बच्चे जैसा रूप बना लेना और आहिस्ते-

से क्रीडा-पर्वतकी चोटीपर जा बैठना। और फिर? फिर जुगनुओं-की पंक्तिके समान झिलमिलानेवाली अपनी बिजलीकी दृष्टिसे घरके भीतर झाँकना, बहुत हौले हौले! तुमने अगर जल्दी-जल्दी तेज निगाह दौडाई तो अनर्थ हो सकता है, इसलिए, मित्र, बहुत सावधानीसे आहिस्ते-आहिस्ते उस घरके कोने-कोनेमे दृष्टि निपात करना, कड़कना नहीं, चमकना नहीं, चकाचौंध न उत्पन्न कर देना। तुम नही जानते कितने सुकुमार शरीरके कितने सुकुमार हृदयको तुम्हें पहचानना है। तेज रोशनी न कर देना, हल्की-हल्की रोशनी—अल्पाल्प भास!—

गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्रसंपातहेतोः
क्रीडाशैले प्रथमकथिते रम्यसानौ निषण्णः।
अर्हस्यन्तर्भवनपतितां कर्तुमल्पाल्पभासं
खद्योतालीविलसितनिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम् ॥ १८ ॥

घुमन्तू मौजी जीव हो। उज्जयिनीसे बढोगे तो बौद्ध कलाकारोंकी बनाई हुई भोंडी तुन्दिल यक्ष-मूर्तियाँ तुम्हें बहुत मिलेगी। इधरके लोगोंने मान लिया है कि सेठ और सेठानियाँ मोटे शरीरकी होती है। जिसके पास पैसा होता है वही मोटा होता है, उसीके शरीरकी चर्बी बढ जाती है और यक्षोसे बडी सेठाई कहाँ मिलेगी? सो कल्पनाविलासी होते हुए भी यथार्थवादी हौसवाले बौद्ध मूर्तिकार यक्षिणियोकी भोंडी मूर्तियाँ बनाया करते है। साँची और भरहुतमें इन मूर्तिकारोंने ऐसी सैंकड़ो यक्षमूर्तियाँ बना रखी है और आज भी बनाते जा रहे हैं। इन्हे देखनेके बाद तुम्हारी कल्पनामें यक्ष-यक्षिणियोकी ऐसी तुन्दिल भोंडी मूर्तियाँ घूमती रहेंगी। कहीं मेरी

प्रियाको भी ऐसी न मान बैठना। मानता हूँ मित्र, कि पैसा मनुष्यको भीतर और बाहरसे बेडौल बना देता है, पर मेरा घर ऐसा नहीं है। मेरी प्रियाके चित्तमे उस अद्भुत प्रेम देवताका निवास है, जो मनुष्य लोकमे भी दुर्लभ है। इसलिए भीतरसे बाहर तक वह कमनीय है। वह तन्वी है, पतली सुवर्ण-शलाका-सी! प्रथम कैशोर वयमे जो तपे हुए कुन्दनका-सा गाढ पीत-रंग तरुणियोमें श्यामा कान्ति निखार देता है, जिसके कारण यौवनके चढ़ावपर खडी तरुणियोको 'श्यामा' कहकर सहृदय जन उल्लसित होते हैं वही रंग तुम उसमे तरंगित होते देखोगे। वह सच्ची 'श्यामा' है। मुझे व्याकुल विरही समझकर मेरे शब्दोको अन्यथाप्रयुक्त मत समझना। मुझे तो कभी कभी ऐसा लगता है कि असली कुन्दनका श्यामाभ रग विधाता एक ही बार बना सके थे और उसका उपयोग उन्होंने मेरी हृदयेश्वरीके बनानेमें ही किया था। संयोगसे ही वह मोहन रंग बन गया होगा, रोज-रोज थोड़े वह संयोग आता है, बना सो बना! और उसके नन्हें-नन्हे नुकीले दॉत? जब वह हँसती है तो मोती झरते है! शास्त्रोमें जो लिखा है कि स्निग्ध, समान रूपवाले, एक कतारमे समान भावसे विन्यस्त दॉतोको 'शिखरी' कहते हैं, जो ताम्बूल रससे सिक्त होने पर भी स्फुट कान्तिवाले, समानभावसे चमका करते है, वह तो मानो उसीको देखकर लिखा है। वह सचमुच 'शिखरि-दशना' है। शास्त्रकारोकी दृष्टि भी कहॉ कहॉ तक जाती है! निश्चय ही वे त्रिकालदर्शी होते है, नहीं तो इतना पहले इन सौभाग्यव्यञ्जक दॉतोका अनुमान वे कैसे कर सकते थे? तुम इन सुन्दर दाँतोको ताम्बूल-रस-सिक्त देखते तो मेरी बात समझ सकते। कहाँ देख पाओगे? उसने साल भर तक पान खाया ही

नहीं होगा। मगर फिर भी उन 'शिखरी' दाँतोंको तुम पहचान लोगे। मगर मै भी क्या प्रलाप बक रहा हूँ। तुम्हें उनके दाँत दिखेंगे कहाँ? हाय, उसने इन शाप-भ्रष्ट दिवसोमे क्या कभी हँसनेका अवसर पाया होगा मित्र, विरहने सब झुलसा दिया होगा। वे कुन्दकलिकाके समान दाँत कभी खुले ही नहीं होगे। अधरोष्ठ भी सूख गए होगे। परन्तु मेरा अनुमान है कि उन अधरोंपर सहज विराजमान लालिमा जो पके हुए बिम्बफलमे ही दिखाई देती है, अब भी वैसी ही होगी। तुमने 'पक्व बिंबाधर' शब्द सुना होगा, इसका अर्थ समझना चाहो तो उसीके अधरोको देखकर समझ सकते हो। हाय, वे अधर अब कैसे हो गए होगे! और वे चकित हरिणीके नेत्रोके समान भीत-चपल बडी-बड़ी आँखे? मित्र, शोभा और विच्छित्ति उन आँखोके इशारेपर उठती बैठती है। तुमने पद्मिनी जातिकी उत्तम स्त्रियोकी चर्चा सुनी होगी। महामायाका सबसे सुकुमार विलास स्त्री-शरीरके अवयवोमे आविर्भूत हुआ है और उस विलासका सर्वाधिक मोहक अधिष्ठान पद्मिनी नारी है। महामायाका यह त्रैलोक्य-मनोज्ञ विलास पद्मिनी नारीके 'चकितमृगदृशाभप्रान्त-रक्त' नयनोंमे उल्लसित होता है। मै कहूँ कि महाशक्तिका सर्वोत्तम उल्लास नारीके नयन-कोरकोमे तरंगित होता है तो इसे गलत न समझना। एक बार जिसने इस प्रकारके शोभन नयनोका प्रसाद पा लिया वह धन्य है, उसने इस दृष्टिके मूलमें स्पन्दित होने वाली महामायाका प्रसाद पा लिया है। तुम जिस क्षण प्रियाके उन मनोज्ञ नयनोको देखोगे उसी समय तुम्हें अपना जीवन चरितार्थ जान पड़ेगा, तुम्हारे शत-शत जन्मान्तर कृतार्थ जान पड़ेंगे। क्योंकि तुम

विधाताकी आदि सिसृक्षाको प्रत्यक्ष रूपमे देखोगे। यदि मेरी हृदयेश्वरी बैठी होगी तो तुम उसकी तनुता, उसकी श्यामता, उसकी अधर-शोणिमा और उसके स्निग्ध नयन-कोरकोको देखते ही पहचान लोगे। पर कदाचित् वह गृह-कर्ममे लगी हो, शायद खड़ी हो, शायद चल रही हो। फिर भी तुम्हें उसे पहचाननेमें देर नहीं लगेगी। उसका कटि-प्रदेश बहुत पतला है, नाभि गभीर है, पीन-उन्नत वक्षःस्थलोके कारण वह आगे झुकी हुई-सी लगती है, श्रोणी-भारके कारण गतिमे अलस विक्षेप है, बहुत धीरे-धीरे चल पाती है। मै ठीक कहता हूँ मित्र, विधाताकी आदि-सिसृक्षाको तुम उसमे प्रत्यक्ष देख पाओगे।

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः ॥ १९ ॥

आदि-सिसृक्षा! मंत्रद्रष्टाओने कहा है कि परम शिवके मनमें एक बार यह बात आई कि मै एक हूँ, अनेक होऊँ। उसी दिन वे दो तत्त्वोमे अपने आपको विभक्त करके प्रकट हुए। कोई नहीं जानता कि वह कौन-सी दुर्वार अभिलाप-भावना थी जिसने परम शिवको इस प्रकार अपने आपको द्विधा-विभक्त करनेको प्ररोचित किया। उसी दिनसे उस दुर्मद अभिलाप-भावनाने विश्व ब्रह्माण्डमें शिव और शक्तिकी अबाध लीलाको मुखर कर रखा है। इसीको शास्त्रकारोने 'सिसृक्षा' कहा है। और उसी दिन जो शिव और

शक्तिका पारस्परिक आकर्षण व्यक्त हुआ वह 'आदि रस' कहा जाता है। भरतमुनिने उसे ही 'आद्य रस' या 'शृङ्गार रस' नाम दिया था। यह सारा जगत्प्रपंच उसी आद्य रसका लीला-निकेत है। उसी दिन विश्वव्यापिनी महाशक्तिने अपने-आपको भुवन-मोहिनी रूपमे व्यक्त किया। वह भुवन-मोहिनी विधाताकी आदि सृष्टि है। क्या होता होगा भुवन-मोहिनीका त्रैलोक्य मनोहर रूप! कोई नहीं जानता कि उन्होने कितने रूपोमे कितनी बार अपने आपको अभिव्यक्त किया है। मेरा हृदय कहता है कि 'पिंड' मे कभी-कभी उस ब्रह्माण्ड-व्यापी शक्तिको देख लेनेका सौभाग्य पुरातन पुण्योके अतिरेकसे ही होता होगा। उनकी महिमामयी अभिव्यक्तिको कचित्-कदाचित् बडभागी लोग ही देख सकते होगे। अलकाके इस शख-पद्मांकित गृहमे जो सौभाग्य-लक्ष्मी तुम्हें मिलेगी उसमें मैंने भुवन-मोहिनी—विधाताकी आदि सृष्टि—को प्रत्यक्ष देखा है। मेरा सारा अस्तित्व तरल होकर उसीकी ओर ढरक जाना चाहता है, यह कैसी रहस्य-लीला है! आदि-सिसृक्षा, आद्य-रस और आद्य-सृष्टिका रहस्य मेरे निकट हस्तामलककी भांति प्रत्यक्ष हो रहा है। यह क्या उन्माद है, चित्त-विक्षेप है, चपल-वातुलता या मेरे जननान्तरोकी कृतार्थता है? नही जानता मित्र, कि तुम इसे क्या समझ रहे हो, परन्तु मेरा रोम-रोम आज पुलकित कदम्ब-केसरकी भॉति उद्भिन्न होकर कहना चाहता है कि यहीं विधाताकी 'आद्या-सृष्टि'—युवति-जनोमे अभिव्यक्त होनेवाली भुवन-मोहिनी—प्रत्यक्ष हो उठी है, यही उनका त्रैलोक्य-सौभग रूप मूर्तिमान हुआ है!

अपने प्रिय-सहचरसे वियुक्त चक्रवाकीकी भांति वह बहुत कम बोल रही होगी। उसे तुम मेरा दूसरा प्राण—द्वितीय

जीवन—समझना। विरहके भारसे भारी बने हुए दीर्घ दिवस बीतते जा रहे हैं, उत्कंठा गाढसे गाढतर होती जा रही है। मै समझता हूँ कि वह शिशिरमथिता पद्मिनीके समान मुरझा गई होगी। उत्कंठा बडी कठिन मनःस्थिति है। जब हृदय-स्थित राग अपना लक्ष्य नही प्राप्त कर पाता तो चित्तमें महती वेदनाका आविर्भाव होता है, जो समूचे शरीरको सुखा डालती है। मैंने अपनी प्रियाके जिस मोहन रूपका वर्णन किया है वह निश्चय ही बदल गया होगा। शिशिरमथिता पद्मिनीमे सहज उत्फुल्लता कहाँ रह जाती है। हाय, उसका रूप ही दूसरा हो गया होगा।

तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम् ।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्॥२०॥

निस्संदेह प्रबल वेदनासे उसकी आँखे सूज गई होगी, गर्म निःश्वासोकी निरन्तर लगती रहनेवाली आँचसे उसके ओष्ठ सूखकर फीके पड़ गए होगे, कहाँ रह गई होगी चकित हरिणीके समान बरबस आकृष्ट करनेवाली आँखे और पक्व बिंबफलके समान अधर-लालिमा! सब झुलस गया होगा! और उसका चाँद-सा सुन्दर मुख तो तुम पूरा देख भी नहीं सकोगे। अत्यन्त चिन्ताकातर होनेके कारण आधा तो वह हथेलीपर ही पड़ा होगा, और जो कुछ खुला भी होगा उसपर उसकी अस्त-व्यस्त चिकुर-राशि असगत भावसे बिखुरी होगी। ठीक उसी प्रकारकी शोभा होगी, जैसी तुम्हारे द्वारा आच्छादित चन्द्रमंडलकी होती है। फिर या तो वह देवताओंकी पूजामें व्यस्त

मिलेगी, या अपनी कल्पनाद्वारा मेरे विरह-निर्बल शरीरका चित्र बनाती दिखेगी या फिर यह भी हो सकता है कि मीठी सुरीली आवाजवाली मैनासे पूछती ही दिख जाएगी कि ऐ रसिके, तुझे क्या अपने मालिककी याद आती है, तू तो उन्हे बडी प्रिय थी।

नूनं तस्याः प्रबलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियाया-
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्बिभर्ति ॥ २१ ॥

आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।
पृच्छन्ती वा मधुरवचना सारिका पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ २२ ॥

और यह भी हो सकता है कि मैले वस्त्र धारण किए गोदमें वीणा लिए, उच्च स्वरसे मेरा नाम लेकर और मेरे कुलकी कीर्त्ति-गाथा बनाकर गानेका प्रयत्न करती मिलेगी। हाय मित्र, कितना करुण होगा वह गान। निरन्तर झड़नेवाली अश्रुधारासे भींगे हुए वीणा-यंत्रको तो वह किसी प्रकार पोछ भी लेती होगी, पर मेरे स्मरणसे इतनी बेसुध होगी, कि सधे स्वरोंके आरोह–अवरोहको भूल ही जाती होगी !—

उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथंचिद्—
भूयोभूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्तीम् ॥२३॥

मगर संभावना और भी है। हो सकता है कि मेरे विरहके दिनसे ही देहली पर दिए हुए पुष्पोको धरतीपर फैलाकर गिन रही हो कि कितने दिन वीत गए, और कितने दिन और वाकी रह गए हैं! हो सकता है कि हृदयमे मेरे साथ विताए हुए आनन्दमुखर अवसरोंका कल्पनाद्वारा साक्षात्कार करके उसीके रसमे मुग्ध वनी हो। प्राय स्त्रियॉ प्रियके विछोहके समय ऐसा-ही-कुछ करती हुई दिन काटा करती हैं—यही उनका विनोद होता है।

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः।
मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः ॥ २४ ॥

दिन तो किसी प्रकार उसके इन कामोसे कट जाता होगा पर रात कैसे कटती होगी? मुझे आशंका है कि रातको उसका दु:ख वहुत वढ जाता होगा, उस समय ऐसे विनोद काम नहीं आते होगे। जव महाकाल देवता धरित्रीपर अंधकारका काला पर्दा डाल देते हैं तो अन्त:करण समस्त कर्मजालसे विरत होकर विश्राम पाता है। यही समय प्रियविरहिताओका सवसे कठोर समय होता है। दूर पडे हुए प्रियतमके चित्तमे जो भावतरंगे उठा करतीं हैं वे न-जाने कैसे प्रेमीके चित्तको मथित-व्याकुल कर देती है। कैसे इन लोगोंकी धड़कन सैकडो योजन दूर रहनेवाले प्रियजनके चित्तमें कपनकी प्रतितरगे उत्पन्न करती हैं, यह भारी रहस्य है; कहीं-न-कहीं कोई अंतर्निहित अद्वैत भावधारा अवश्य काम कर रही होगी, नहीं

तो यह सब कसे संभव हो सकता है? इसीलिए मेरी सलाह यह है कि तुम निशीथ कालमें मेरा संदेशा सुनाकर उसे सुखी करना। मैं ठीक जानता हूँ, वह विचारी उनीदी होकर धरतीपर पडी होगी! कैसी निद्रा, कैसी सेज! खिडकी उसने अवश्य खोल रखी होगी, तुम चुप-चाप उसीपर जा बैठना।

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः
शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।
मत्संदेशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वी निशीथे
तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः॥ २५॥

तुम नहीं समझ सकते मित्र, भगवान् न करे कि तुम्हे यह सब समझनेका अवसर मिले! विरह बडी दारुण अवस्था होती है। मेरी प्रियाकी, पल्लविनी लताके समान यौवनभरित देह-यष्टि इस मानसिक दुःखके निरन्तर आक्रमणसे क्षाम—क्षीण—हो गई होगी; जैसे भरे वसन्तमे वात्याव्याकुल पत्रहीना मधुमालती लता हो। विरह-तापके शमनार्थ उसने किसलयोकी शय्या रची होगी और उसके एक किनारे दुबकी पड़ी हुई इस प्रकार दिख रही होगी, जैसे कृष्ण-पक्षकी चतुर्दशीकी क्षीण चन्द्र-कला उषःकालीन प्राची दिशामें ठिठकी पडी रहती है। कोई ऐसा भी समय था, जब मेरे साथ नाना भावके आनन्दजनक सुखोको अनुभव करती हुई उस दुःखिनीकी राते क्षण भरकी तरह कब समाप्त हो जाती थीं, इसका पता भी नहीं चल पाता था। आज वे रात्रियाँ कितनी दारुण बन गई होगी, विरहके कारण उनका विस्तार बहुत बढ गया-सा जान पडता होगा। जो राते कभी पलभरमें समाप्त हो जाती थीं, उन्हें आज आँसुओंके साथ न जाने कैसे बिता रही होगी। विरहदीर्घ रात्रि-काल उसके लिए बडे भयंकर हो उठे होगे।

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वां
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ २६ ॥

मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि चन्द्रमाकी शीतल किरणें उसे कष्ट ही दे रही होगी। पहलेके अनुभवोसे उत्साहित होकर जब वह जालीदार खिड़कीके रास्तेसे घरमे प्रवेश करनेवाली चन्द्र-किरणोको आशा और विश्वासके साथ देखती होगी और शीतलताके स्थानपर उष्णता पाकर कातर भावसे तुरन्त अपनी दृष्टि हटा लेती होगी, तो उसका सुंदर मुख कैसा करुण हो उठता होगा! हाय हाय, उसकी ऑखे दुख जाती होगी, अश्रुभारसे गीले पलकोसे उन्हे ढकनेका प्रयत्न करती होगी, और वे बडी-बडी ऑखें मेघावृत दिवसमें आधी-खुली आधी-मुँदी स्थलपद्मिनीके समान विचित्र करुण शोभा धारण करती होगी। क्या कहोगे उन ऑखोंको मित्र, जो न खुली हैं, न मुँदी हैं, न जगी हैं, न सोई है। मेरा अन्तस्तल उनकी कल्पना मात्रसे फटा जा रहा है। हाय-मित्र, मेघावृत्त दिवसकी स्थल-पद्मिनी—'न प्रबुद्धा न सुप्ता'!—

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टा-
न्पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव।
चक्षुः खेदात सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥२७॥

उसने मंडन द्रव्योंका उपयोग तो छोड़ ही दिया होगा। उसे मंडन द्रव्योका बडा शौक है। घरमें कस्तूरी, कुंकुम, चन्दन, कर्पूर, अगुरु, कुलक, दन्तवास, पटवास, सहकार, तैल, ताम्बूल, अलक्तक, अञ्जन, गोरोचन, क्या नहीं हैं? पर इस समय तो कैसा तेल और कैसा फुलेल! बस किसी तरह दो लोटा पानी डालकर नहा भर लेती होगी। पूजा तो उससे छूट नहीं सकती, और इस समय तो प्रवासी प्रियतमकी मंगल-कामनाके लिए वह और भी आवश्यक हो गई। इसलिए नहाना वह नहीं भूलती होगी। तुम चाहो तो इस पानी ढालनेको 'शुद्ध स्नान' कह सकते हो। मगर सोचो मित्र, इस शुद्ध स्नानसे उसके रेशमसे भी अधिक मुलायम केश कैसे रूखे हो गए होगे। मै निश्चित जानता हूँ कि उसके ये रूखे केश उसके मनोहर गुलावी गालोपर बुरी तरह विखर गए होगे और लाल-लाल अधरोको क्लेश पहुँचानेवाले उत्तप्त निःश्वासोके झोकोंसे हिल भी रहे होगे। वह उन्हें हाथोसे बराबर संयत करती होगी, पर यत्न-वंचित स्नेह-वंचित ये रूखे केश बार-बार उसके मुखपर छा जाते होगे। बड़े लाडले हो गए है वे। बेचारे क्या जानते हैं कि उनके यत्न करनेका प्रयासी चित्त कहीं खो गया है! कौन उनकी सेवा करे? चाहती होगी नींद आ जाय, सपनेमे भी प्रियका मिलन हो जाय, पर कमबख्त ऑसुओंकी अविरल धारा आँख भी तो लगने दे!—

> निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
> शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।
> मत्संभोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
> माकांक्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥ २८ ॥

जिस दिन अभिशापका मारा हुआ मै विदा हुआ उस दिन उसने केशोंको बॉधनेवाली माला फेक दी और एक ही लटमें उन्हें बॉध दिया। मैने उमड़ते हुए ऑसुओकी धाराको रोककर विदा ली। विदा लेना क्या सरल था? मगर विदा लेनी पडी। विचित्र माया है मित्र, कोई नहीं चाहता कि उसका प्रिय बिछुड़ जाय, सभी चाहते हैं कि प्रियजनको बहुपाशमे बॉध कर रोक ले। पर संसार है कि सभीको छोड-छाड कर चल देना पड़ता है। मनुष्य कितना विवश है, कितना अपंग! नीचेसे ऊपर तक भयंकर हाहाकारके भीतरसे एक ही स्वर प्रबल भावसे सुनाई दे रहा है 'रुक जाओ, ठहरो!' और इस स्वरके कोलाहलमें अदृष्ट देवताके भृकुटितर्जनसे निरन्तर सबको छोडकर चल देनेकी प्रक्रिया अविराम गतिसे चल रही है। वह सामने जो राम-गिरिका निर्झर है उसके भीतर इस हाहाकारका क्रन्दन मुझे नित्य सुनाई देता है। मुझे ऐसा लगता है कि ऊॅचाईपर लोकचक्षुके बिल्कुल अन्तरालमे स्थित कोई प्रेयसी उसे अपनी शिथिल बाहुलताओसे जकड़नेका प्रयत्न कर रही है और कह रही है, 'क्या थोडा और नहीं रुक सकते' और वह कातर भावसे चीत्कार कर रहा है, 'नहीं प्रिये, ऊपर देवता विकट भृकुटिसे इंगित कर रहा है कि तू शापग्रस्त है, तुझे नीचे गिरना पड़ेगा, नीचे, नीचे और भी नीचे!' यही हुआ मित्र, जब प्रथम वियोगकी कल्पना मात्रसे मेरी प्रियाने व्याकुल होकर मेरे प्रस्थान-क्षणमें मेरी ओर देखा था, अविरल अश्रुधारामे धौत होते रहनेके कारण उसके गुलाबी कपोल फीके पड़ गए थे, ऑंखे सूज गई थीं और मृणाल-नालके समान उसकी बॉहें शिथिल श्यामा-

लताकी भाँति निश्चेष्ट हो गई थीं। उसका कंठ वाष्प-रुद्ध था, वह कुछ बोल नहीं सकी, केवल भीतिजड़ नेत्रोकी कनखियोसे उसने मेरी ओर विवश भावसे देखा। उस दृष्टिका अर्थ था, 'क्या अब कुछ भी नहीं हो सकता ?' क्या हो सकता है प्रिये, तुम्हारी इस दशाको देखकर पाषाण पिघल सकता है, पर देवता तो पाषाण नहीं है, उन्हें विधाताने सब दिया है केवल हृदय नहीं दिया। चलना ही पड़ा। मै निरन्तर इस निर्झरके हाहाकारमे अपनी ही कहानी सुना करता हूँ। कितनी करुण वेदना है, पर संसार है कि अपनी गतिसे चला ही जा रहा है। मै जब चलनेको प्रस्तुत हुआ उस समय प्रियाने उस मालतीकी माला—मालतीदाम—को केशोसे उतार दिया, जिसे बडे यत्नसे मैने स्वयं केश-पाशमे उलझाया था। उसने सारे केशोकी एक ही लट बनाकर समेटके बाँध लिया। मेरा अन्त'करण जैसे फटकर द्विधा-विभक्त हो गया। उसने कातर भावसे सक्षेपमे कहा—'जब लौटोगे तो तुम्हीं ठीक करोगे।' हाय मित्र, यह शाप न जाने कब समाप्त होगा। इसका जब अंत होगा, जब फिर लौट जाऊँगा तभी उन केशोका कुछ संस्कार हो सकेगा; अभी वे ऐसे सूखे हो गए होगे, कि उन्हें छूनेमे उसे पीडा हो रही होगी, उलझी हुई स्पर्श-क्लिष्टा चोटी उसके गालोंपर आ लटकती होगी, और वह बार-बार अपने—असयमित होनेके कारण बढे हुए नाखूनोवाले हाथसे हटानेका प्रयत्न कर रही होगी।

इसमे एक रहस्य है। मै जब बालक था, राजा कुबेरकी सेवामे अभी नियुक्त ही हुआ था, उस समय गुह्यकेश्वरीने एक बार आज्ञा दी कि आज सरस्वतीविहारमे त्रैलोक्य-जननी पार्वती पधारने-वाली है, उनके चरणोमें अर्घ्य देनेके लिए सुन्दर ताजे फूलोंका

तोडा लेकर वहाँ उपस्थित होओ। मैंने आज्ञाका पालन किया। वैभ्राज वनके सर्वाधिक मनोहर और सुकुमार पुष्पोंका चयन किया और यथासमय सरस्वती-विहारमे पहुँचा। भवन बहुत अच्छी तरह सजाया गया था। वहाँ जानेपर पता चला कि वहाँ केवल अलकापुरीकी महिलाएँ ही उपस्थित थीं, पुरुष कोई नहीं था। एक क्षणके लिए मुझे संकोच हुआ, परन्तु गुह्यकेश्वरीकी आज्ञाका उल्लघन करना भी ठीक नहीं था। इसलिए द्वाररक्षिणियोकी अनुमति लेकर सभास्थलपर पहुँच गया। प्रवेश करते ही त्रैलोक्य-जननीके दर्शन हुए। मेरा जन्मजन्मान्तर कृतकृत्य हो गया। कोई ऐसा प्रसंग चल रहा था जिसमे मेरे अचानक पहुँचनेसे व्याघातकी आशका थी, इसलिए गुह्यकेश्वरीने इगितसे आदेश दिया कि चुप-चाप खड़े रहो, मैं कुछ ठिठका-सा वही खडा रहा। एक वार देवीकी स्निग्ध दृष्टि मुझपर पडी और मुझे ऐसा लगा कि मेरे अन्तर तकके समस्त कलुष आज धुल गए। उस समय एक विद्याधर-वधू पार्वतीके चरण-स्पर्श करने पहुँची थी। उसकी सुन्दर मनोहर चिकुर-राशि खुली हुई थी और उसकी पीठपर इस प्रकार झूल रही थी, जैसे मधु-लोभसे आकृष्ट सैकड़ो भ्रमरोकी पंक्तियाँ झूल रही हों। जगन्माताने प्यारसे उसका सिर चूम लिया और बड़े लाड़के साथ उसे उठा लिया। फिर उन्होंने उसके केशों-को तीन वेणियोमें विभाजित किया और उन्हें एक दूसरेसे उलझा कर चोटी गुह दी, फिर मेरी ओर देखकर कहा—'मालतीमाला देना!' और फिर मालतीमालाको सुकुमार भावसे वेणी-मूलमें लपेट दिया। उस निसर्ग-सुन्दर वधूके मनोहर रूपमें चार चाँद लग गए। वेणीको धीरे धीरे सहलाते हुए उन्होने कहा—जानती हो गुह्यकेश्वरी, यह बात

त्रिवेणी है, यह महामायाकी ओरसे सौभाग्यवती वधूको दिया हुआ सर्वोत्तम उपहार है। गुह्यकेश्वरीने विस्फारित नेत्रोंसे जगज्जननीकी ओर देखा। बोली—'जरा समझाकर कहो माता!' त्रैलोक्यजननी पार्वतीने मंद स्मितके साथ कहा—'यह जो मेरुदंड है न, इसके मूलमें एक त्रिकोण शक्तिपीठमें स्वयभू शिव विराजमान हैं, वहीं उन्हें साढ़े तीन वलयोंमें वेष्टित करके भगवती कुंडलिनी अधोमुखी होकर विराजमान हैं। ऊपर मेरुदंडके बीच इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाडियोकी त्रिवेणी है। मूलाधारमे वह युक्त होकर निकलती है और मस्तक-स्थित सहस्रारके ठीक नीचे मुक्त वेणीके रूपमें बिखर जाती हैं। अनेक साधनाके बाद भगवती कुंडलिनी जागृत होकर इस त्रिवेणी मार्गको धन्य करती है। परन्तु महामायाने सौभाग्यवती रमणीको यह बाह्य त्रिवेणीका वरदान दिया है। यह सहस्रारसे आरंभ होकर युक्त वेणीके रूपमें चलती है और मूलाधार पर आकर मुक्त वेणीके रूपमे बिखर जाती है। यह अद्भुत त्रिवेणी अनायास रमणीको वह सिद्धि देती है जिसके लिए पुरुषको सैकड़ो प्रकारकी कृच्छ्र-साधना करनी पड़ती है। मूलाधारसे उर्ध्वगति होनेके लिए भगवती कुडलिनी कठिन आराधना चाहती हैं। सहस्रारमे विराजमान परम प्रेयान् शिवसे विमुख भगवती कुडलिनी मानवती प्रियाके समान गर्विणी हैं। उनकी कुटिलताके कारण ही शिवजी उन्हे 'वामा' कहते है और साधक जन 'भुजगिनी' कहते हैं। सौभाग्यवती रमणीके सहस्रारसे उद्भूत यह अलक-त्रिवेणी बाह्य-भुजंगिनी है। चतुर दूतिकाकी भाँति यह उन्हें प्रियके अनुकूल बनाती हैं, यही कारण है कि जो सामरस्य पुरुषके लिए अनेक कृच्छ्र तपोंसे भी दुर्लभ ही बना रह जाता है वह सौभाग्यवती पतिव्रताको अनायास प्राप्त हो जाता है।

इतना कहनेके वाद जगन्माताने उस वालिकाकी ओर दृष्टि फेरी। उसकी वेणी-भुजंगिनी तब भी उन्हींके हाथोंमें थी। उन्होने फिर यत्नपूर्वक उस वेणीको सहलाया और बड़े दुलारसे उसके कपोलें-पर हल्का-सा आघात करके मन्द स्मितके साथ कहा—'मेरे गुहनेसे नहीं होगा, जब तुम्हारा चहेता मंत्रचैतन्यपूर्वक गुहेगा, तब होगा। जा भाग जा!'

गुह्यकेश्वरीने फिर आश्चर्यके साथ पूछा—'मंत्रचैतन्य क्या होता है माता।' देवीने कहा—'जो भी मनन किया जाय वही मंत्र है। पर ध्यान, धारणा और समाधि जब एक ही विषयपर निबद्ध हो जाती हैं तब मन्त्रचैतन्य सिद्ध होता है। एक विषयका ध्यान, दूसरेकी धारणा और तीसरेकी समाधि मंत्र-चैतन्यमें बाधक होती है। जब पतिधर्मचारिणीका प्रिय ध्यान, धारणा और समाधिमें एक ही विषयमें समाहित होता है तभी यह सिद्धि दोनोंको प्राप्त होती है।' गुह्यकेश्वरीने और अचरजकी मुद्रा धारण की। बोलीं—'अर्थात्?' और मेरी ओर स्नेहभरी दृष्टिसे देखकर बोलीं—'अब तुम जा सकते हो वत्स!' मैंने अनिच्छापूर्वक आज्ञा-पालन किया। शायद मेरा पुराकृत पुण्य इतना प्रबल नहीं था कि मैं लोकजननी पार्वतीके मुखसे 'मंत्रचैतन्य'की व्याख्या सुन सकता या शायद कुछ ऐसी बात थी जिसका मैं अधिकारी नहीं। जो भी हो मैं मन्त्रचैतन्यके ज्ञानसे वंचित रह गया!

पर मैंने एक बात गाँठ बाँध ली। पतिव्रताकी वेणीको तीन धाराओंमें विभाजित करके मालती-दामसे गुहना पति-धर्म है। मैंने कभी एक दिनके लिए भी इस प्रिय कर्त्तव्यके पालनमें आलस नहीं

किया। विवाहके बाद मेरा यह नित्यकर्म हो गया। हाय, आज आठ महीनोसे मै कर्त्तव्यच्युत हूँ, आठ महीनेसे सहस्रारकी मुक्त वेणी नहीं बन सकी, आठ महीनोसे यह शिवदूतिका भगवती कुण्डलिनीको सामरस्य भावकी ओर लानेका प्रयत्न नहीं कर सकी। उस दिन प्रियाने उसे जो एक लटमें बाँधा सो बाँध ही दिया। कब इस दारुण शापका अन्त होगा, कब मै प्रियाकी वेणी सँवार सकूँगा, कब असयत दुर्ललित केश उसके कपोलप्रान्तपर अत्याचार करनेसे विरत होगे, कब उसकी कमल-कोरक-सी उँगलियोपर असंयमित नखोका सस्कार होगा; कब मै पति-धर्मकी मर्यादा पालनमें समर्थ हूँगा। कब! कब! हाय मित्र!—

> आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
> शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्।
> स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं
> गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥ २९ ॥

मित्र, उसने सब आभूषण त्याग दिए होगे, इसलिए उसकी कोमल देहयष्टि निराभरण होकर और भी हलकी हो गई होगी। बार-बार दुःखके कठिन आघात सह-सहकर वह इतनी कमजोर हो गई होगी कि इस कृशकोमल शरीरको सँभाल रखना भी उसके लिए आयासकी बात हो गई होगी। वह क्या ठीकसे सो भी सकती होगी! मैं निश्चित जानता हूँ कि उसकी यह कृश-दुर्बल तनु-लता दुबकी हुई शय्याके एक किनारे पड़ी होगी। तुम्हें भी उसकी यह दशा रुला देगी। तुम नवजलमय अश्रु अवश्य

वरसाओगे। मैं जानता हूँ, तुम आर्द्र अंतःकरणवाले सहृदय हो, ऐसे लोग दूसरोका दु.ख देखकर अवश्य पसीज जाते है। तुम्हारी वडी करुण दशा होगी। उस दु.खिनीको देखकर तुम्हारे जैसा आर्द्रान्तरात्मा रोए विना कैसे रह सकता है!

सा संन्यस्ताभरणमवला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद्दुःखदुःखेन गात्रम्।
त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा॥ ३०॥

मैं ठीक नहीं कह सकता कि जगन्माताने जो मंत्रसिद्धिकी वात कही थी वह क्या थी। क्या वह सिद्धि प्रियाको प्राप्त हो गई है? कैसे वताऊँ? परन्तु एक वात मुझे वहुत आश्चर्यजनक लगती है। मेरे अनेक युवक मित्र अपनी प्रियाओके सरस विहारकी वातें मुझे सुना जाते थे। वे वताया करते थे, किस प्रकार अवहित चित्तसे उन्होने अपनी प्रेयसियोके कपोलदेशपर सुन्दर और सुडौल मंजरियाँ अंकित की है, किस प्रकार कस्तूरिकातिलकसे उनके मनोहर भाल-पट्टको अलकृत किया है। मैंने भी कपोलदेशपर सुन्दर मंजरी वना देनेका प्रयत्न किया। परन्तु मुझसे वह कभी वन नहीं सकी। मैं जव तूलिका उठाता था तभी मेरे हाथोंमें कप उत्पन्न हो जाता, अंगुलि-प्रान्त स्वेदार्द्र हो उठते, और, और तो और, मेरे सारे शरीरमें एक प्रकारकी अवश जड़िमा आ जाती। तीन वार मैंने प्रयत्न किया और तीनों वार ऐसी ही दशा हुई। चौथी वार जव मैंने काँपते हाथोंसे तूलिका पकडी तो मेरी प्रियाने मंद-स्मितके साथ कहा, रहने

दो, तुमसे नहीं होगा। पर मैं सत्य कहता हूँ मित्र, दोष मेरा (अकेलेका ही) नहीं था। चित्रकर्मके लिए चिक्कन मसृण आधारकी आवश्यकता होती है। मुझे एक बार भी उसे प्राप्त करनेका सौभाग्य नहीं मिला। हाथमें तूलिका ली नहीं कि प्रियाके कपोल-प्रान्त उद्भिन्न-केसर कदम्ब पुष्पके समान रोमाञ्चित हो जाते थे। ऐसी भूमिपर चित्र-कर्म कैसे हो सकता है। मैं अपने नव-विवाहित मित्रोंके सौभाग्यसे ईर्ष्या करता था। वे बड़भागी हैं जिन्हें न कंप होता है, न स्वेद आता है, न रोमाञ्च-विषम कपोलप्रदेशकी बाधा मिलती है। पर जब मैं हाथमें वेणी लेता हूँ तो मुझे ऐसा-कुछ अनुभव नहीं होता। मुझे प्रथम दिन ही बाह्य त्रिवेणीको मुक्त वेणीसे युक्त वेणीमें और युक्त वेणीसे मुक्त वेणीमें परिणत करनेकी सिद्धि मिल गई थी। क्या मंत्र-सिद्धिका कुछ अंश मुझे भी मिल गया था? कौन बताएगा?

मुझे आशंका हो रही है कि तुम मेरी बातको अन्यथा तो नहीं समझ रहे हो। तुम्हारे चेहरेपर जो चपल स्मित रेखा है उसका अर्थ मैं समझ रहा हूँ। तुम कह रहे हो कि वाह दोस्त, संसारकी सर्वश्रेष्ठ पतिव्रताके पति होनेका गौरव लेना चाहते हो, 'सुभग' कहलानेका अच्छा रास्ता खोज निकाला है—सुभग, जिसकी ओर रस-लुब्ध प्रेयसियाँ उसी प्रकार स्वयं आकृष्ट होती हैं जिस प्रकार भ्रमरावलियाँ उत्फुल्ल कुसुमकी ओर आकृष्ट होती हैं! नहीं मित्र, मेरा मतलब ऐसा कुछ नहीं है। सुभग तो तुम हो। मैं विरह-व्यथा-का मारा शापित-तापित अपनेको 'सुभग' समझनेका मिथ्या अहंकार कैसे धारण कर सकता हूँ? सुभगंमन्य कोई और होते होंगे, मुझे गर्वके साथ अपने आपको सौभाग्यशाली माननेवाला अधम जीव

मत समझो। मैं तुम्हारी उस सखी—अपनी प्रिया—को ठीक-ठीक जानता हूँ, इसीलिए यह सब कह रहा हूँ। वह मुझे सचमुच प्यार करती है, जी भर कर प्यार करती है, इसीलिए मैं अनुमानसे ऐसा कह रहा हूँ, कि वह ऐसी ही हो गई होगी। इसे सुभगंमन्य सौभाग्य-गर्वितकी वाचालता न समझो। मेरा हृदय कहता है कि वह कितनी आर्त है। शीघ्र ही तुम उसे देखने पर मेरी बात ज्यों-की त्यों प्रत्यक्ष देखोगे। तुम उस समय अनुभव करोगे कि मैं जो कह रहा हूँ उसमें रत्ती भरकी अतिरंजना नहीं है! आखिर यह उसका प्रथम विरह है—अननुभूत, अज्ञात, अप्रत्याशित!—

जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-
दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि।
वाचालं मां न खलु सुभगंमन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद्भ्रातरुक्तं मया यत् ॥३१॥

तुम जब उसके पास पहुँचोगे तो उसकी आँखें फड़केंगी। शास्त्रकारोंने कहा है कि अत्यंत प्रिय संवादकी सूचना आँखें देती हैं ऊपरकी ओर फड़क कर। यह शुभ शकुन है। न जाने विधाताका कैसा रहस्यमय विधान है कि प्रिय या अप्रिय बात कान तक पहुँचनेके पूर्व अंगोंमें विशेष प्रकारके स्पंदन होने लगते हैं। सुदूरस्थित प्रिय व्यक्तिके कुशल या अकुशलकी सूचना पहले ही मिल जाती है। क्या यह इसीलिए होता है कि संसारव्यापी कोई एक ही चित्त है जो व्यक्तिचित्तके रूपमें अभिव्यक्त और स्फुरित होता रहता है? अगर ऐसा न होता तो अनायास अंगोंमें स्पन्दन

क्यो होने लगता? क्या यही शास्त्रकारोंद्वारा बताए गए हिरण्य-गर्भकी लीला है? मै अज्ञ हूँ मित्र, मुझे ऐसा लगता है कि कोई विराट् चेतना अवश्य ब्रह्माण्ड भरमे व्याप्त है। एक व्यक्तिका चित्त यदि दूसरे व्यक्तिके चित्तके साथ एकतान हो सके, तो यह संवेदनशील विराट् चिति शक्ति एक दूसरेके भावोको सूक्ष्म भावसे अवश्य चालित करती है। अकारण उसमें पर्युत्सुकीभाव जाग पड़ता है। प्रियके कुशल-संवादसे बढकर औत्सुक्य जागृत करनेवाली दूसरी वस्तु क्या हो सकती है? धन्य हो हिरण्यगर्भ, धन्य है तुम्हारी अपरंपार लीला! मैं निश्चित जानता हूँ सखे, कि तुम जब निकट पहुँचोगे तो तुम्हारी सखीके नयन भी ऊपरकी ओर स्पन्दित होंगे। कैसे होंगे वे नयन? हाय, रूखे बालोंके अत्याचारसे उनके अपांग-वीक्षणकी क्रिया अवरुद्ध हो गई होगी; दीर्घकालसे उनमे स्निग्ध काजल नहीं पडनेसे वे फीके हो गए होंगे और मेरे वियोगके कारण उसने उन्मादक मधुपान तो छोड ही दिया होगा; इसलिए मेरा परिचित चञ्चल भ्रू-विलास उन नयनोको भूल ही गया होगा। ऐसे ही करुणोत्पादक वे नयन तुम्हे दीखेगे, परन्तु सब होने पर भी उनका सहज सौन्दर्य तो कहीं गया नहीं होगा। नील-कुवलय-दल-मोहिनी शोभा ज्यो-की-त्यो बनी होगी। हाय मित्र, जब वे बिखरे बालोंसे अवरुद्ध कटाक्षवाले, अन-ऑजे नयन ऊपरकी ओर फडकेंगे, तो उस नील कमलकी मोहिनी शोभा धारण करेंगे जो चञ्चल मछलियोंके ऊधमसे चटुल हो उठता है। जब मैं मीन-क्षोभसे चटुल बने कुवलय (नीलकमल) की शोभा धारण करनेवाले नयनोंकी कल्पना करता हूँ तो जीमें अजब कचोट अनुभव करता हूँ।—

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्या
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ ३२ ॥

जाओ मित्र, जाओ, उस शोभाको यदि देख सके तो कृतार्थ होगे, मैं शापित विरही तो केवल कल्पनाके नेत्रोंसे देखकर ही सतोष कर रहा हूॅ। हिरण्यगर्भकी लीला धन्य है, न जाने वह कितने अंगोंमे स्पदन उत्पन्न करती है, न जाने कितने गूढ सकेतोसे वह प्रिय चित्तमें अहैतुक औत्सुक्यका संचार करती है। अगर यह न होता तो यह कैसे संभव था मित्र, कि शुभ संवादकी सूचना काक सुना जाते, छिपकली बता देती और आंगनके वृक्ष कंप-व्याकुल अज्ञात वेदनासे चचल हो उठते। चराचरमें यह विराट् चैतन्यका समष्टि चित्त कितने स्वरोमें झंकृत होता रहता है, इसका कोई हिसाब नहीं है। शास्त्रकारोने तो कछ थोड़े-से शकुनोका उल्लेख भर कर दिया है। प्रिय कुशल-संवादके ईषत् पूर्व ही नयन स्पदित हो उठते हैं, उरुदेश (जंघा) स्फुरित हो उठता है, मानों सुखद स्मृतियोका अजस्र भाण्डार बॉध तोडकर निकल पड़ता है। धन्य हो हिरण्यगर्भ, तुम्हारी महिमा अपरंपार है। मेरा चित्त विक्षुब्ध समुद्रकी भॉति आज उत्तरंग है। प्रियाके गौर उरुदेश (जंघा)के स्पन्दनकी बात सोचता हूॅ, तो चित्तमें हजार स्मृतियॉ उद्वेल हो उठती हैं। इन भाग्यहीन मेरी ॲगुलियोने न जाने अपने तीखे नाखूनके अस्त्रसे कितनी बार उस कोमल उरुयुगलपर अत्याचार किया है। हाय, आज उनपर मोतियोकी लरवाली मनोहर करधनी भी न होगी। वे श्रान्त-शिथिल

होनेपर मेरी सेवा पानेके—संवाहनके—उचित अधिकारी थे, आज वे भी निराभरण हो गए होगे और अत्याचार और सेवा दोनोसे वंचित होकर कैसे-कुछ हो गए होगे। मेरा चित्त उन्मथित है, मैं विवेक खो बैठा हूँ, हाय मुलायम गोल कदली-स्तंभकी भाँति वे मनोहर उरुयुगल ! मगर छोड़ो इन बातोको। मेरे प्रमादका बुरा न मानना। उनमे जो बायॉ है वही स्पन्दित होगा। स्त्रियोका ऐसा ही होता है। उनके सौभाग्यकी सूचना बाएँ अग स्पंदित होकर देते है। कहते हैं कि जब प्रथम बार निस्पद परा शक्तिमे स्फोट हुआ था, तो जो वामावर्त घूमा था, वह वामावर्त अकुश रूपमें उन्मिषित हुआ। त्रिपुरसुन्दरीका वह अंकुश आयुधवाला रूप ही क्रमश' स्फोट मार्गपर अग्रसर होता हुआ ससारकी सबसे सुकुमार, सबसे महनीय, सबसे कोमल वस्तु नारीरूपमें अभिव्यक्त हुआ है। पिड व्यक्तिमें वह वामा नाड़ीसे चलकर सहस्रारमें विराजमान शिवको दक्षिणावर्त वेष्टित करनेका प्रयास करती है। शायद यही कारण है कि यह जो वाम अंग है, जो महामायाके स्वायत्त पक्षपातसे धन्य हुआ है, वही नारीके माङ्गल्यको व्यक्त करता है। मैं सरस कदलीस्तंभके समान उस गौर वर्णवाली बाँई जाँघमें स्पन्दनकी बात सोच रहा हूँ। जल्दी जाओ मित्र, जल्दी जाकर आद्या शक्तिके प्रथम उन्मेषकी शाश्वत लीलाको प्रकट करनेका निमित्त बनो।

वामश्चास्याः कररुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै—
मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या।
संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तंभगौरश्चलत्वम् ॥ ३२ ॥

देर मैं ही कर रहा हूँ। तुम ठीक कह रहे हो, देरका कारण मैं ही हूँ। परन्तु एक बार सोच देखो, कितना नाजुक काम तुम्हें सौंप रहा हूँ। वह फूलसे भी अधिक मुलायम है, किसलयसे भी अधिक अदनार है और नवनीतसे भी अधिक कोमल है। जरा सावधानीसे काम नहीं लोगे तो अनर्थ हो जानेकी आशका है। मै जानता हूँ तुम नहीं जानते, इसलिए तुम्हे बता देना मैं आवश्यक समझता हूँ। तुम चतुर हो, मुझे कोई संदेह नहीं, पर मन नहीं मानता। यह मेरे दुर्बल चित्तकी पाप-आशका है, पर तुम इसका बुरा न मानना। यह केवल चैत्तिक दैन्यका निदर्शन भी समझ सकते हो। पर जब तक मैं तुम्हे ठीक-ठीक समझा न दूँ, तब तक मुझे चैन न मिलेगा। थोडा धैर्य रखो, मैं संक्षेपमे एक-दो बात कहकर अपना छोटा-सा संदेश बता दूँगा। फिर तुम तेजीसे उड़ जाना।

बात इतनी-सी ही है मित्र, कि जरा सावधानीसे काम करना। अपने इस दुखिया मित्रकी दशा देखकर हड़बड़ी न कर बैठना। हो सकता है, जिस समय तुम वहाँ पहुँचो उस समय वह सो रही हो। शरीरधर्म ही तो है, नहीं तो उस विरह-विधुरा कोमलांगीको नींद कहाँ। मुझे भी क्या नींद आती है? लेकिन मै नींदकी बाट जोहता रहता हूँ। जरा-सी झपकी आई नहीं कि प्रियाका निसर्ग-सुन्दर रूप स्वप्नमें साकार हो उठता है। उसकी भी यही दशा होगी। हँसो मत, परिहासकी बात नहीं है। उसे यदि जरा-सी नींद आ गई होगी तो निश्चय ही मुझे—प्रियतमको—स्वप्नमें पा गई होगी। निश्चय ही स्वप्नमें उसकी भुजलता स्वप्न-लब्ध प्रियके गाढ आलिङ्गनमे बँधी होगी। मित्र, उसे इस सुखसे वंचित न होने देना। गरजना मत, कड़कना मत, पहर भर चुप-चाप रुके रहना।

जानता हूँ, पहर भर एक ही जगह चुप-चाप पड़े रहनेमे तुम्हे बड़ा कष्ट होगा, पर किसी प्रकार सह लेना। यह बहुत जरूरी है। इतना कष्ट तुम सह ही रहे हो, तो थोडा और सही। मेरी यह चिरौरी याद रखना! चुप-चाप नि:शब्द रुके रहना, ऐसा न हो कि उसका यह सुख-स्वप्न टूट जाय, भुजलताकी आलिंगनजन्य गाँठ छूट जाय—

तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व।
माभूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथंचि-
त्सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम ॥३४॥

देखो मित्र, वह बड़ी मनस्विनी है। एकाएक कोई परपुरुष उसकी ओर झाँके तो वह नाराज हो जाती है। इसलिए भी तुम्हे बहुत चतुराईसे काम लेना होगा। मै जैसा बताता हूँ वैसा करना। पहले तो अपनी जल-कणिकासे शीतल बने हुए वायुके द्वारा उसे धीरे-धीरे जगाना। शास्त्रमे कहा है कि जो प्रभु हो, मानी हो, मनस्वी हो, वह अगर सोया है तो हड़बड़ा कर उसे नहीं उठाना चाहिए। बहुत धीरे-धीरे मृदुमर्दनसे पैर चॉपना चाहिए, या वक्षस्थल पर मृदु मंद भावसे पंखा झलना चाहिए, या फिर हल्का-सा मधुर संगीत सुना कर उठाना चाहिए। महारानियोकी दासियाँ ऐसा ही करती है। शास्त्रका यह विधान मनस्विनी पतिव्रता स्त्रियोके लिए भी उसी प्रकार पालनीय है। मैं तुमसे ऐसा तो कैसे कहूँ कि तुम मृदु स्पर्शसे उसके चरणोको धीरे-धीरे दबाना; विरहमे मैं कितना भी

विवेक खो बैठा हूँ तो भी मैं तुम्हारी और अपनी, दोनोंकी, मर्य्यादाका जानकार हूँ। परन्तु शीतल-व्यजन तुम्हारे जल-सीकरोसे सिक्त वायु द्वारा आसानीसे हो सकता है। इस मंद और शीतल वायुमें मालती-लताके पुष्पजालकी सुगंधि तो अपने आप मिल ही जाएगी। वह मालती लता भी तो तुम्हारी प्रतीक्षामे मुरझाई पडी होगी—मूर्छित, निद्रित, सुप्त! तुम एक ही साथ दोनोको जगाना। वस्तुतः तुम्हारी सखी मालती-लताके पुष्पके समान ही सुकुमार है। तुम्हें एक ही साथ दो सुकुमार वस्तुओके आश्वस्त करनेका सुख मिलेगा। जब वह उठ जाय, उस समय अपनी बिजलीको भीतर छिपा लेना। यदि इसकी चमक उसकी अलसाई ऑखोपर पडेगी तो डर जा सकती है। खिड़कीपर तुम्हें बैठा देखकर वह घबरा सकती हैं, उसकी ऑखे मुँद जाएँगी। तुम्हें धीरे धीरे अपने मृदु गर्जनके शब्दोमे उस मानिनीसे बात करना होगा। इन बातोंका याद रखना बहुत आवश्यक है। यदि तुमने धीर-भावसे यह काम नहीं किया, तो यह सारा कष्ट व्यर्थ हो जाएगा। एकदम अपरिचितको खिडकीपर बैठा देखकर न जाने उसकी कैसी हालत हो, न जाने उसके कोमल चित्तमे कौन-सी प्रतिक्रिया उत्पन्न हो, न जाने कौन-सी पापाशंका उसके चित्तको मथित कर दे। इसलिए मित्र, तुम्हे बडी सावधानीसे काम लेना होगा। उसी अवसरपर तुम्हारी सारी चतुरताकी परीक्षा होगी।

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम्।
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः॥ ३५॥

वहुत देर भी न करना। ज्यो ही उसे अपनी ओर उन्मुख देखना त्यों ही मेरा संदेशा सुनाना आरंभ कर देना। परन्तु सबसे पहले तुम्हें अपना परिचय दे देना होगा। मै समझता हूँ कि तुम्हारा पहला वाक्य यह होना चाहिए कि 'हे सौभाग्यवती, मै तुम्हारे पतिका प्रिय मित्र मेघ हूँ।' ऐसा कहनेसे उसके चित्तसे दो आशकाएँ तुरन्त हट जाएँगी। पहली तो यह कि कहीं यह व्यक्ति कोई बुरी खबर तो नहीं लेकर आया है। ज्यो ही तुम उसे सौभाग्यवती कहकर पुकारोगे, त्यो ही उसकी यह आशंका मिट जाएगी। दूसरी आशंका यह कि, इतनी रातको चुप-चाप किसीके घरमें प्रवेश करनेवाला कोई दुष्ट तो नहीं है, या चोर तो नहीं है; लेकिन जब तुम कहोगे, कि तुम उसके पतिके प्रिय मित्र हो, तो वह आश्वस्त होगी। उसके चित्तमें औत्सुक्यका भाव आएगा और आदरके साथ वह तुम्हारी ओर उन्मुख होगी। फिर तुरन्त तुम दूसरा वाक्य कहना। 'अपने हृदयमे तुम्हारे प्रति तुम्हारे प्रेमीके दिए गए संदेशको लेकर उपस्थित हुआ हूँ'। इसके बाद ही थोडे शब्दोमें तुम्हें यह भी वता देना होगा, कि तुम इस कार्यके सर्वथा उपयुक्त हो। तुम केवल संदेशवाहक ही नहीं हो, विरही जनोके मिलनमे सघटक भी हो। इसमें सकोचकी कोई वात नहीं, आत्मश्लाघाकी भी कोई वात नहीं है। जहाँ दुःखी जनोके दुःख दूर करनेका प्रश्न है वहाँ आत्मश्लाघामूलक आत्म-परिचय उचित ही नहीं आवश्यक भी है। अपरिचित वैद्य यदि रोगीको अपना परिचय न दे, तो उसके मनमें विश्वास कैसे उत्पन्न कर सकेगा? ऐसे अवसरोपर आत्मश्लाघा लोकहितैषणाकी सहायक होती है।

उसमें कोई दोष नहीं है। इसीलिए कहता हूँ मित्र, कि तुम संकोच छोडकर अपने बारेमें इतना और कह देना, कि "मै वह हूँ जो प्रवासमें गए, थके हुए, चलनेमे उत्साह खो बैठे हुए उन बटोहियोंमें जो अपने घरोमें विसूरती हुई प्रियाओंकी लट बनी हुई वेणियोंको खोलनेके लिए उत्सुक बने होते हैं—नवीन उत्साहका संचार करता है। मेरी मन्द्र-स्निग्ध ध्वनि सुनकर उनकी नसोंमें स्फूर्ति आती है, मनमे उमंग भर जाता है, पैरोमे तेज चलनेकी शक्ति आ जाती है। जो विरहके मारे हुए हैं, और मिलनके लिए व्याकुल हैं; किंतु जो राह चलते-चलते थक कर चूर हो गए हैं उनमे नयी आशा, नयी उमंग, नयी स्फूर्ति देना मेरे मंद गर्जनका ही करतब है। मै पथ-क्लान्त प्रेमियोका सहारा हूँ और विरहविधुर अबलाओंका साहस हूँ।" इसमे आत्मश्लाघाकी कोई बात नहीं है मित्र, तुम नही जानते, किंतु जानता हूँ कि इसमे रंचमात्र भी अतिरंजना नहीं है। तुम्हारा यह श्रवण-सुभग गर्जन, वियोग-व्यथित चित्तमे कितनी आशा और औत्सुक्यका संचार करता है यह तुम नहीं जानते! तुम नहीं जानते कि तुम्हारे संपर्कसे शीतल-बनी वायु बीजोमे अंकुरित होनेकी कैसी वेदना उत्पन्न कर देती है। सृष्टिके मूलमें महाशिवकी जो मूल सिसृक्षा है उसको तुम निरन्तर मुखरित करते रहते हो, उन्मिषित होनेके लिए व्याकुल करते रहते हो; और जहाँ कहीं भी चित् शक्ति प्रसुप्त पड़ी होती है वहीं उसमें आत्माभिव्यक्तिके लिए चाञ्चल्य उत्पन्न कर देते हो। कोई नहीं जानता कि यह सब कैसे होता है; परन्तु होता है, यह सत्य है। तुम्हारे मद-मधुर गर्जनको सुनकर मैने अनुभव किया है कि निश्चय ही कोई एक समष्टि-चित्त

है जिसपर एक ही समान प्रतिक्रिया होती रहती है, और तदनुसार व्यक्ति-चित्तमें अपनी-अपनी अवस्था और प्रकृतिके अनुकूल उद्‌बुद्ध होनेकी शक्ति जागृत होती रहती है। शास्त्रोंमें जिसे हिरण्यगर्भ कहा है, जो समस्त विश्वात्माके समष्टि चित्तका प्रतिरूप है उसे तुम प्रत्यक्ष भावसे आन्दोलित उल्लसित और व्याकुल करते रहते हो। हिरण्यगर्भकी लीलाके तुम प्रमुख सूत्रधार हो। नहीं तो यह कैसे हो सकता, कि प्रसुप्त-से-प्रसुप्त अन्तःकरणमें आत्माभिव्यक्तिकी एक ही व्याकुल लीला समस्त जगत्‌में एक ही साथ चचल हो उठती हैं। इसमें आत्मश्लाघाकी कोई वात नहीं है। तुम्हे विधाताकी ओरसे यह वरदान प्राप्त हुआ है। इसीलिए कहता हूँ मित्र, कि तुम विना किसी संकोचके अपनी सहज प्रकृतिका परिचय अवश्य दे देना। इससे उस विरहिणीका विश्वास बढेगा और मेरा संदेश सुननेकी अभिलाषा बढ़ेगी। मेरी वातोंको पागलका प्रलाप मत समझ लेना; जिस क्रमसे कह रहा हूँ उसी क्रमसे कहना।—

> भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धिमामम्बुवाहं
> तत्संदेशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।
> यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
> मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरवलावेणिमोक्षोत्सुकानि॥ ३६॥

जब तुम ऐसा कहोगे तो निश्चय ही जिस प्रकार हनुमान्‌जीकी ओर सीताजीने बडे चावसे आँखे उठाई थीं, उसी प्रकार वह भी उच्छ्वसित-हृदय होकर आदरपूर्वक तुम्हारी ओर देखेगी। भाग्य, तुम नहीं जानते कि तुम एक ही साथ कितनी आशाओं और

आकाक्षाओको उस विरहिणीके चित्तमे उत्पन्न कर दोगे। यह तो तुम जानते ही हो, कि स्त्रियोके लिए अपने प्रियका कुशल-संवाद और प्रेम-संदेश, मिलनसे थोडा ही कम होता है। केवल उसमे स्थूल मृण्मय सयोगकी कमी आ जाती है; नहीं तो अन्त करणका चिन्मय मिलन ज्यो-का-त्यो प्राप्त होता है। इस चिन्मय मिलनका माहात्म्य मै जानता हूँ। केवल स्थूल दृष्टिवाले वचकाने विचारके भोडे रसिक ही चिन्मय मिलनका रहस्य नहीं समझ पाते। वही महामायाके वास्तविक चिन्मय रूपकी अभिव्यक्ति है, स्थूल मिलन तो उसीको पाकर धन्य होता है। जहाँ अन्तस्तलमे चिन्मय औत्सुक्यका अभाव है, जहाँ भीतरकी प्रत्येक चेष्टा अन्तर्निहित चैतन्यसे चालित और आन्दोलित नहीं है, वहाँ स्थूल मिलनका कोई महत्त्व नहीं है। तुम्हारी मन्द्रध्वनिसे अन्तःस्थित चिन्मय देवता व्याकुल हो जाते हैं और वही व्याकुलता सच्चे प्रेमका मूल मंत्र है। इसलिए कहता हूँ मित्र, कि प्रियका संवाद और प्रेमका संदेश स्थूल मिलनसे थोडे ही कम हैं। स्थूल मिलन उसकी अंतिम परिणति है, चिन्मय मिलन ही उसका मूल-रूप है। वही महामायाकी चेतन-प्रक्रिया है और वही हिरण्यगर्भकी वास्तविक लीला है।—

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैवम्।
श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात्किंचिदूनः॥ ३७॥

हे आयुष्मन्, मेरे कहनेसे, और परोपकार करनेकी भावनासे अपनेको कृतार्थ करनेके उद्देश्यसे तुम उससे इस प्रकार कहना कि 'हे अबले, तुम्हारा बिछुड़ा हुआ साथी रामगिरिके आश्रममे सकुशल है और तुम्हारी कुशल जानना चाहता है।' इतना शुरूमे ही कह देना बहुत आवश्यक है। देखो मित्र, विपत्ति मनुष्यके लिए बडी सुलभ वस्तु है, वह अचानक आ सकती है और अकारण भी आ सकती है। दूर बैठा हुआ प्रिय-जन निरन्तर सोचता रहता है कि हमारे प्रियपर कोई विपत्ति तो नही आई; वह कुशलसे तो है, कहीं किसी प्रकारके विघ्नका तो शिकार नहीं हो गया, किसी कठिनाईमें पड़कर दु ख तो नही पा रहा है। विरही प्राणीके चित्तमें पाप-आशकाएँ निरन्तर उठा करती है। इसलिए और कुछ करनेके पहले उसे यह बता देना आवश्यक है कि उसका प्रिय सकुशल है, उसपर कोई विपत्ति नहीं आई। फिर जो लोग अत्यन्त कोमल-चित्तके हैं उनके मनको आश्वस्त करनेके लिए कुशल-संवाद पहले कह देना ही उचित है। यदि सदेश-वाहक कुशल वृत्तान्त कहनेमें थोड़ा भी विलम्ब करे, तो न जाने उसके मनमें कौन-सी आशंका आ उपस्थित हो। वह मूर्च्छित हो सकता है, विपन्न हो सकता है, इसलिए कुशलवाली बात पहले कहना आवश्यक है।—

तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तु
ब्रूयादेवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ३८ ॥

अब मेरा संदेश सुनाना । मेरा कुशल-संवाद सुनकर वह आश्वस्त हो गई रहेगी । संदेशा क्या है मित्र, मैं विरहसे व्याकुल हूँ इसमें तो केवल दु:ख ही दु:खका रोना है । मेरे कष्टोकी गाथा सुनाकर तुम उस कोमल चित्तको और भी अधिक दु:खी बनाओगे । लेकिन यह भी भुवनमोहिनीकी लीलाका एक अद्भुत रहस्य है कि यद्यपि विरही जन अपने प्रियके कुशल-संवादके लिए अत्यन्त चिन्तित होते हैं तथापि उन्हें यह जानकर प्रसन्नता होती है कि उनका प्रिय भी उन्हींके समान व्याकुल है, चित्त-वैक्लव्यका आखेट बना हुआ है । उसे यदि यह मालूम हो जाय, कि उसका प्रेमी राग-रंगमे मस्त है तो उसकी पीडा बढ जाती है; और उसे मालूम हो जाय, कि उसका प्रेमी वियोगमें व्याकुल है, कातर है, तो उसे सुख मिलता है । इससे क्या यह नहीं सिद्ध होता, कि प्रत्येक व्यक्ति अपने चित्तके समानान्तर चित्तको देखकर सुखी होता है ? व्यक्ति-चित्तके इस दुहरे रूपको तुम क्या कहोगे ? भुवन-मोहिनीके प्रत्येक इंगितमें न जाने कितने रहस्य भरे हुए है; बुद्धि-व्यापार उसे समझनेमें एकदम असमर्थ है । इसलिए तुम्हें मेरी व्याकुलताका सदेश कहनेमे हिचकना नहीं चाहिए । कहना, कि, हे सौभाग्यवती, तुम्हारे दूर बैठे हुए बिछोही प्रियका मार्ग बैरी विधाताने रोक रखा है; इसलिए वह तुमसे मिल भले ही न सके, परन्तु अपने दुर्बल अगोको देखकर तुम्हारे दुर्बल अंगकी बात समझ सकता है; अपनी गाढतम जलनसे तुम्हारी तपनका अनुमान कर सकता है; अपनी निरन्तर बहती हुई अश्रुधारासे तुम्हारे नयनोसे झरती रहनेवाली निरन्तर अश्रुधाराको समझ सकता है, अपने उत्कंठित चित्तसे तुम्हारी

अहर्निश जगती हुई उत्कठाका अंदाजा लगा सकता है, अपने निरन्तर उठते हुए उष्ण उच्छ्वासोसे तुम्हारे उच्छ्वासोंकी बात समझ सकता है। परन्तु हाय वह बहुत दूर है इसलिए तुम्हारे सामीप्यका सुख नही प्राप्त कर सकता। परन्तु नित्य नवीन-नवीन संकल्पोसे वह तुम्हारे अंत करणमे नित्य प्रवेश करता रहता है। उसका विश्वास है कि तुम संकल्पोका अनुभव कर रही होगी। वैरी विधाता केवल स्थूल मार्गोंको रोक सकता है, सूक्ष्म मानस सकल्पोंको वह कसे रोक सकेगा ? प्रिये, तुम अपने चित्तकी गतिसे मेरे चित्तकी गतिको आसानीसे समझ सकती हो। मेरे अत:करणके संकल्प नि:संदेह तुम्हारे अंत:करणमें स्पंदित होते होंगे।—

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
संकल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः॥ ३९॥

मैं अपनी अवस्था तुमसे क्या निवेदन करूँ! एक वह ज़माना था, जब तुम्हारे प्रियको तुमसे कोई ऐसी भी बात कहनी होती थी, जो तुम्हारी सखियोके सामने ज़ोर-ज़ोरसे कहनेमें कोई सकोच नहीं होता, जो सहज भावसे सहज ही कही जा सकने योग्य होती; उसे भी तुम्हारा प्रिय तुम्हारे कानमे कहता था! क्यों कहता था? तुम्हारे सुदर मुखके स्पर्श करनेके लोभसे। स्पर्श करनेका कोई बहाना ढूँढ़ निकालना ही उसका उद्देश्य होता था। अब तुम अपने उस प्रियकी न तो बात सुन सकती हो, न उसे आँख भरकर देख

ही सकती हो। तुम्हारा वही प्रिय मेरे मुँहसे उत्कंठामें विरचित इन शब्दोंको तुम्हारे पास कहता है।—

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्ता-
त्कर्णे लोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात्।
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृष्ट-
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदं मन्मुखेनेदमाह ॥ ४० ॥

प्रिये, मै श्यामा लताओमे तुम्हारा शरीर, भीत-चकित हरिणीकी ऑखोंमे तुम्हारी मोहिनी चितवन, पूर्ण चन्द्र-मंडलमें तुम्हारे मुखकी सुन्दर छाया, मयूरोके वर्ह-भारमे तुम्हारे केशोका अनुपम सौंदर्य, और नदीकी हल्की तरंगोमे तुम्हारे भ्रू-विलासकी लीला देखा करता हूँ। परन्तु हाय प्रिये, एक स्थानपर तुम्हारा सादृश्य कहीं भी नहीं मिलता। प्रिये, चडि, तुम कोपनस्वभावा हो; एक ही स्थानपर तुम्हारा संपूर्ण सौन्दर्य पाना संभव नहीं। हाय प्रिये,

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां वर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥४१॥

चंडी—कोपन-स्वभावा! यक्षकी ऑखोसे अश्रुधारा अविरल गतिसे वहने लगी। यह मेघ क्या इस वातको समझ पाएगा! किसी दिन नारद मुनिने पितृगृह गई हुई पार्वतीको शिवसे लड़ा देनेका सकल्प किया। वोले, तुम तो यहाँ वैठी हो वहाँ शिवने

विचित्र लीला शुरू की है! एक बडी ही सुंदर स्त्रीको हृदयमें धारण किया है। तुम्हे यहॉ भेज दिया है और वहॉ नित्य रास-लीला रचा रखी है। पार्वतीको क्रोध हुआ, ईर्ष्या हुई और वे रहस्यका पता लगाने चलीं। सहज-कोपनताने उन्हें और भी रमणीय बना दिया। फिर उन्होने भुवन-मोहिनीका रूप धारण किया। भक्त लोग उसी त्रैलोक्य-मनोज्ञ रूपको 'त्रिपुर-सुन्दरी' कहा करते हैं। वे जब भगवान् शकरके पास पहुॅचीं तो क्या देखा? भगवान् कर्पूर-गौर कान्तिसे दमक रहे हैं। सिद्धासन बॉधकर अपूर्व भाव-मग्न समाधिमे आसीन है। त्रिपुरसुन्दरीकी छाया उनके कपाटके समान गौर वक्ष:स्थलमे प्रतिफलित हुई। त्रिपुरसुंदरीकी भृकुटियॉ तन गईं। उन्होने समझा, यही वह स्त्री है जिसे शिवने हृदयमे छिपा रखा है। उनके मुखपर ईर्ष्या, कोप और असूयाके कारण जो तमतमाहट हुई वह तपाये हुए कुन्दनकी भॉति गाढ़ ताम्र वर्णकी शोभामें बदल गई। छायामे भी यह प्रतिक्रिया दिखी, लेकिन रंग और भी श्यामल हो गया था। छाया ही तो थी! भवानीका चड रूप और भी चण्डतर होकर उनकी छायामे अनिक्रमित हुआ। उनके कोप-व्याकुल रूपको देखकर समाधिसे उठे हुए शिवने शान्त स्वरमें पूछा—क्या बात है देवि! देवीके मुखपर क्रोधका भाव और भी गाढ हो आया। उन्होने कडकके पूछा—तुम्हारे हृदयमें यह कौन स्त्री है? शिवने हॅसकर उत्तर दिया—तुम्हारी छाया! देवी गल गईं। उन्हें नारदका परिहास समझमे आ गया! भक्तोंमें यह छाया 'त्रिपुरभैरवी' के नामसे पूजित होती है। उसने भगवतीके कोपन स्वभावको उद्दीप्त किया था, बुद्धिको मोहग्रस्त बनाया था।

तबसे महाशक्तिकी यह सहज-कोपना लीला नारीसौन्दर्यको खिलाती आई है, प्रेमकी जीर्णताको झाड़ती आई है, अनुरागके हृदयमे विक्षोभकी तरंगे उकसाती आई है। हाय मेघ क्या यह सब समझ सकेगा! कोमल भावसे उसने फिर अपना संदेशा कहा—

'हे सुन्दरि! तुम्हारे प्रणय-कुपित रूपको पर्वतशिलाओंपर गेरूके रगसे चित्रित करता हूँ और तुम्हें मनानेके लिए जब अपने आपको तुम्हारे चरणोपर डाल देनेका प्रयास करता हूँ, तो उस समय बार-बार उमडते हुए आँसू मेरी दृष्टि-शक्तिको लोप कर देते है। हाय, क्रूर कृतान्त चित्रमें भी हमारा तुम्हारा मिलन नहीं सह सकता।—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया—
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥ ४२॥

'प्रिये, जब कभी मैं तुम्हे स्वप्नमें देखता हूँ और निर्दय भावसे आलिङ्गन करनेके लिए अपने हाथ ऊपर फैलाता हूँ उस समय वन-देवियाँ भी मेरी दशापर तरस खाकर मोतीके समान बडे-बडे अश्रु-बिंदु वृक्षोंके किसलयोपर प्राय. ढुलका देती हैं। मेरी इस दयनीय दशासे उनका भी चित्त द्रवित हो उठता है; उनकी भी आँखोसे अश्रु टपक पड़ते है और वे भी दयार्द्र होकर व्याकुल हो उठती हैं।—

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसंदर्शनेषु ।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥ ४३ ॥

'हे गुणवती, हिमालयकी ओरसे जो हवा दक्षिणकी ओर चलती है; जो देवदारु द्रुमोंके किसलय पुटको भेद करनेके कारण उसके क्षरित दुग्धसे सुगंधित बनी होती है और हिमालयकी तुषार-राशिके स्पर्शसे शीतल बनी रहती है उसे भी मै हृदयसे लगाता हूँ। इस आशासे कि इसने तुम्हारे अगोका स्पर्श किया होगा और मै भी कथंचित् उसका स्पर्श पाकर धन्य हो सकूँगा।—

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।
आलिङ्गयन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥ ४४ ॥

'हे चपलनेत्रे, मैं मन ही मन यह मनाया करता हूँ कि रात्रिके लम्बे-लम्बे तीन प्रहर किसी तरह क्षण भरके समान हो जायं, और दिनकी तपिश हमेशाके लिए मन्द हो जाय, परन्तु मेरी यह दुर्लभ इच्छा कभी पूरी नहीं होती, और उसपर तुम्हारी वियोग-व्यथाके द्वारा पैदा हुई विरहकी यह कडी आँच मुझे कहींका नहीं रहने दे रही है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि कहाँ जाऊँ? किसकी शरण दूँ, कौन मुझे इससे बचाएगा। हाय प्रिये, मुझे इस जलनने अशरण

बना दिया है। ऐसा जान पड़ता है जैसे मैं अनाथ हो गया हूँ; न न कोई सहारा देनेवाला है न ढाढस ही।'—

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।
इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥४५॥

इतना कहनेके बाद यक्षने दीर्घ निःश्वास लिया कि यह मैं क्या कह रहा हूँ! ये सारी बातें क्या प्रियाके कोमल चित्तको और भी नहीं झुलसा देगी? मेरे इस दैन्यकी कहानी सुनकर वह क्या और भी व्याकुल नहीं हो उठेगी? यह भी कोई बात हुई। अपने इस दुःखकी गाथा सुनाकर मैं क्या कुछ ऐसा नहीं कर रहा हूँ जो पहले ही व्याकुल चित्तको और भी उन्मथित कर दे, और भी विक्षेप-कातर बना दे, और भी हाहाकारका शिकार बना डाले। ठहरो मित्र, यह मैं अनुचित कर रहा हूँ। मेरी दीन असहायावस्थाको सुनकर वह विक्षिप्त हो जायगी। तुम उससे ऐसा कहना कि हे कल्याणि, तुम्हारे निरन्तर चिंतनसे मेरी कोई हानि नहीं हो सकती, क्योंकि तुम कल्याणमयी हो। तुम्हें सदा अपने चित्तमें प्राप्त करते रहना परम कल्याणका हेतु है। मैं सोच-विचार कर अपने हृदयको ढाढस भी बँधा लेता हूँ, इसीलिए तुम मेरे बारेमें अधिक चिंता न करना। तुम्हारी जैसी संजीवनी बूटी मेरे चित्तमें निरन्तर कल्याणको उद्बोधित करती रहती है। हे मंगलमयि, मैं तुम्हारी बातोंके स्मरणसे ढाढ़स पाता हूँ, तुम्हारा चिंतन ही मेरा शरण-दाता

है। तुम मेरे लिए अधिक दुःखी न होओ। जिस चित्तमें तुम्हारा निवास है वह अपना सहारा आप ही है, इसमे कातर होनेकी कोई बात नही। व्याकुल मत होना प्रिये, दुनियामे ऐसा कौन है जिसे सदा सुख ही मिलता है और फिर ऐसा भी कौन है जिसे एकान्त दु.ख ही मिलता रहता हो। गाडीके पहियेके चक्केके समान मनुष्यकी दशा कभी ऊपर उठती है, कभी नीचे गिरती है।

> नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
> तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम्।
> कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
> नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥४६॥

प्रिये, शीघ्र ही भगवान् विष्णु नाग-शय्यासे उत्थित होंगे। कार्तिक शुक्लपक्षकी एकादशी अब बहुत दूर नही है। उसी दिन भगवान् विष्णु समस्त देवताओके साथ निद्रा-लीलासे मुक्त होते हैं, इसीलिए समस्त भुवनमें वह तिथि देवोत्थानी एकादशीके नामसे प्रसिद्ध है। उसी दिन मेरे शापका अवसान हो जाएगा। शेष चार महीने किसी प्रकार ऑख मूँदकर बिता देने हैं। फिर तो हम दोनों वियोग-कालमे सोची हुई सारी अभिलाषाओको पूरा करेंगे। उस समय कार्तिककी शुक्ल पक्षकी रात्रियाँ शरत्कालीन चन्द्रमाकी सुहावनी किरणोसे भास्वर बनकर प्रकट हुई रहेगी, और हमारे चित्तकी अभिलाष-तरगें उनके साथ अपना पूर्ण सामञ्जस्य स्थापित कर लेगी। आठ मास बीत गए तो चार मास और बीत ही जाएँगे।

यक्षने मेघके चकित मुखमंडलकी ओर देखा। समझ गया कि मेघ क्या सोच रहा है। अभी तो आषाढ़का प्रथम दिवस है। कार्तिकके शुक्ल पक्षकी एकादशीके आनेमें निश्चित रूपसे चारसे अधिक महीने लगेंगे। तुम ठीक कह रहे हो मित्र, परन्तु जब तक तुम अलकापुरी पहुँचोगे, तब तक आषाढ शुक्ल पक्षकी एकादशी अवश्य आ गई रहेगी। उस दिन मेरे शापके केवल चार ही महीने बाकी रहेंगे। जो विरहिणी एक-एक क्षण और एक-एक मुहूर्त्त गिनकर दिन काट रही है उसे यथा-समय विरह-कालकी सीमाको कम करके बताना ही उचित है। तुम आजसे हिसाब मत करो। जिस दिन पहुँचोगे, उस दिनसे हिसाब करना ठीक होगा। चार मास, सिर्फ चार मास! —

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।
पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥ ४७ ॥

संदेशा तो कह दिया गया। परन्तु इतनी बात तो कोई छलिया भी जाकर कह सकता है। कवि लोग कल्पना करके तो नित्य ही विरहियोंकी दशाका चित्रण किया करते हैं। यक्षने सोचा कि, बुद्धिमती यक्षपत्नी मेघको कहीं वंचक न समझ ले। क्या सबूत है कि सचमुच ही यह उसके पतिके पाससे ही आ रहा है। घरमें अनायास घुस जानेवाले वंचकोंको तो बात बनानेकी कला खूब आती है। नहीं; मेघको कोई चिह्न देना होगा, कोई सहिदानी देनी होगी। कुछ ऐसा अभिज्ञान देना होगा जो निश्चित रूपसे

सिद्ध कर सके कि यह मेघ उसके पतिके यहाँसे आ रहा है। कोई ऐसी वात जिसे दो ही व्यक्ति जानते है यक्ष और उसकी प्रिया। यक्षने मेघसे कहा—मित्र, तुम इतना और कह देना। कहना कि हे अवले, तुम्हारे प्रियने यह भी कहलाया है कि एक वार जब तुम मेरे गलेसे लगी हुई शय्यापर सो रही थीं उस समय तुम अचानक जोरसे चिल्ला पड़ीं और सिसकी भरकर रोती हुई जाग पड़ी। जब मैंने वार-वार रोनेका कारण पूछा तव तुमने आनन्दकी हँसीको अपने भीतर ही रोक लिया, मैंने केवल तुम्हारे अधरोपर लगी हुई हल्की स्मित रेखासे ही अनुमान लगाया। उस दवी हुई ईपद् विकसित मंद मुसुकानके साथ तुमने कहा कि, छलिया, मैंने स्वप्नमें देखा कि तुम किसी दूसरी स्त्रीके साथ रमण कर रहे हो, इसीलिए एकाएक रो पड़ी।—

> भूयश्चाहं त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
> निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा।
> सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
> दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन्कामपि त्वं मयेति ॥४८॥

हे चकितनयने, इस सहिदानीसे ही तुम समझ लेना कि मैं सकुशल हूँ। दूसरोंके कहनेसे मेरे ऊपर अविश्वास मत कर बैठना। न जाने लोग क्यों कहा करते हैं कि वियोग-कालमें प्रेम क्षीण हो जाता है। ऐसा कहनेवाले न तो प्रेमका सच्चा स्वरूप ही जानते हैं, न विरहके अद्भुत उन्नायक गुणोंका स्वरूप ही। सच्ची वात तो यह है कि जब मनचाही वस्तु नहीं मिलती, तभी उसके पानेके लिए चित्तकी व्याकुलता बढ़ जाती है। रस उपचित

होने लगता है और प्रेम राशीभूत होकर समृद्ध हो उठता है। रम्य वस्तुके प्रति देखते रहनेकी जो असाधारण चाह है उसे ही प्रेम कहते है, उसकी चिन्ताको 'अभिलाषा' कहते हैं, उसीका संग पानेकी बुद्धिको 'राग' कहते है, उसकी ओर ढरक पड़नेकी क्रियाको 'स्नेह' कहते है, उसके वियोगको सहन न कर सकनेकी दुर्बलता प्रेम कहलाती है। यह सब तो विछोहकी अवस्थामें ही दीप्त और भास्वर होकर प्रकट होते हैं। जो कहते हैं कि विरहमें प्रेम क्षीण हो जाता है वे प्रेमके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। विरह राशीभूत प्रेमका प्रेरक है, उसका माहात्म्य अपरंपार है।

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनाच्चकितनयने मय्यविश्वासिनी भूः।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्यपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ४९ ॥

हे मेघ, प्रथम विरहके उत्कट शोकसे व्याकुल बनी हुई अपनी उस सखीको आश्वस्त करनेके बाद उसे ढाढस बँधाकर और उसका कुशलसमाचार और पहचान लेकर तुम जल्दी ही मेरे पास लौट आना। लौटना आसान नहीं है। भगवान् त्रिलोचनके महावृषभके द्वारा जिस कैलास पर्वतकी चोटियाँ उखाड़ दी गई होंगी, उसके भुवनमोहन गौरव और रूपको देखकर जल्दी लौट आना सरल नहीं है; फिर भी तुम पर्वतसे लौटना अवश्य। मुझे भी तो ढाढ़स दिलाना है मित्र, मेरा भी तो प्राण व्याकुल है। प्रातःकाल खिले कुन्द-कुसुमके समान यह भी शिथिलवृन्त हो गया है, कभी भी चू पड़ सकता है। इन प्राणोंकी रक्षा करना भी तो तुम्हारा कर्त्तव्य है! इसलिए कह रहा हूँ कि लौटना यद्यपि

कठिन है तथापि भगवान् त्रिलोचनके वृषोत्खात कूट शैलसे लौटना अवश्य। वहीं रम न जाना। अपने इस दुःखी मित्रके प्राणोकी रक्षाका भी ध्यान रखना।—

> आश्वास्यैवं प्रथमविरहोदग्रशोकां सखीं ते
> शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटान्निवृत्तः।
> साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
> प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः॥ ५०॥

हे सौम्य, तुमने अपने इस बंधुका यह काम करना स्थिर कर लिया न! तुम्हारे मनमे कोई दुविधा तो नहीं है? मेरे इस प्रश्नका यह मतलब न समझना कि मै तुमसे कोई प्रतिवचन चाहता हूँ। तुम्हारी धीरता और परोपकार बुद्धिके विपयमे मुझे रंचमात्र भी संदेह नहीं है। खूब अच्छी तरह जानता हूँ मित्र, कि पपीहे जब तुमसे जल माँगते है तो चुपचाप तुम उन्हे जल दे देते हो। वहाँ किसी प्रकारके प्रतिवचन और प्रतिज्ञाकी कोई आवश्यकता नहीं होती। यह तो सज्जनोकी रीति ही है कि जब कोई उनसे किसी बातकी याचना करता है तो वे काम पूरा करके ही उत्तर देते हैं। मैं जानता हूँ कि तुमसे प्रतिवचन लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं, तुम मेरा काम अवश्य करोगे। इतना मैं अवश्य कहना चाहता हूँ कि मैं अपनेको अपराधी समझ रहा हूँ। तुम्हारे जैसे महान् मित्रसे इस प्रकारका तोल्य कर्म कराना अपराध नहीं तो क्या है? मै अपनी प्रार्थनाका अनौचित्य समझ रहा हूँ। घरसे इतनी दूर इस रामगिरि-पर कोई और दिखाई भी तो नहीं देता! चाहे मित्रताके नाते चाहे मेरे विरहकातर चित्तपर तरस खाकर मेरा इतना-सा काम अवश्य

कर देना। फिर तुम मस्तमौला हो. यथेच्छ घूमा करते हो, न ऊधो-का लेना न माधोका देना! तुम्हारे जैसे फक्कडसे कोई काम कराना, तुम्हे निश्चित अवधिके बन्धनोमे बॉधना बडा ही अनुचित है, लेकिन मेरी लाचारीकी ओर देखो, मेरे अशरण भावपर दृष्टि डालो, और अपने परोपकार व्रतका ध्यान करो। बन्धनमे थोडा पड़ना अवश्य है। इतना-सा काम कर लेनेके बाद तुम मौजमे जहॉ चाहो घूमो; जिन देशोको देखना चाहो देखो, एव मस्ती और उल्लासकी जिन्दगी बिताओ। मै प्रतिदानमे तुम्हे दे ही क्या सकता हूँ! मेरे पास केवल कातर चित्तकी कृतज्ञता है, मै केवल भगवान्‌से निरन्तर यही प्रार्थना कर सकता हूँ कि मुझपर जो बीत रही है वह तुमपर कभी न बीते। तुम्हारी इस विद्युत्प्रियाके साथ तुम्हारा कभी वियोग न हो। परम शिव तुम्हारी समृद्धि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ाते रहे और तुम्हारी अंकशायिनी विद्युल्लता क्षण-भरके लिए भी तुमसे अलग न हो।

कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्य.
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥५१॥
एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या।
इष्टान्देशाञ्जलद विचर प्रावृषा संभृतश्री-
र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥५२॥

———

येन संजीवितं काव्य दुर्व्याख्याविषमूर्च्छितम् ।
सुकवेः कालिदासस्य मल्लिनाथं नमामि तम् ॥ १ ॥

शास्त्रैकमतिना तावत् सुधीया तेन सूरिणा ।
नामूलं लिखितं किञ्चित् नानपेक्षितमेव वा ॥ २ ॥

त्यक्तं शास्त्रार्थविदुषा त्वीषन्मूलं रसान्वितम् ।
स्तोकानपेक्षितं चाथ विदग्धजनवाञ्छितम् ॥ ३ ॥

रससारं सुगूढार्थं यथामति विचिन्वता ।
शास्त्रज्ञानविहीनेन व्योमकेशेन शास्त्रिणा ॥ ४ ॥

निबद्धा विमला व्याख्या रसभावैकदृष्टिना ।
स्वान्तःसुखसमाहर्त्र्या श्लक्ष्णया लोकभाषया ॥ ५ ॥

क्व कालिदासस्य गिरः गूढार्था रसनिर्भराः ।
क्व चाल्पविषया ह्यस्य मुग्धाऽज्ञानवती मतिः ॥ ६ ॥

अहो सुमहदस्त्यस्य मेघदूतस्य सौष्ठवम् ।
यद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रलोभ्यते ॥ ७ ॥

सरसेन सभावेन श्रद्धया चालितेन च ।
अनेनागल्भयत्नेन प्रीयतां रसिकोत्तमः ॥ ८ ॥



शुद्धि-पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६	१५	जबर	ज्वर
८	१४	कदली	कदली
१२	२०	वितह	वि तह
१५	१२	चाइए	चाइ ये
२५	१९	अद्भुत्	अद्भुत
३२	१६	मूखा	मूखों
३३	२२	निश्चित्	निश्चित
३५	५	निस्सन्देह	निस्सन्देह
४२	१०	विम्बोकवती	विब्बोकवती
४४	१	देते रहते	देती रहती
४५	२३	निश्चित्	निश्चित
४६	२१	लीलाकी	लीलाको
४६	२२		(यहाँ पृ० ४८ का श्लोक चाहिए)
५२	१२	स	मसे
५५	२	विशेष	निःशेष
५७	२१	अभिलासा	अभिलाषा
५९	१२	अनिश्चित्	अनिश्चित
६२	७	महादेवीकी	महादेवकी
६२	१९	उल्लासित	उल्लसित
७१	१३	ताडव	ताण्डव
७६	८	दुन्द	द्वन्द्व
७९	४	उसने मेघसे	उससे मेघने
११२	९	दर्शोका अनुभव	दर्शनका सुख अनुभव
१२०	१८	बहिरूपवन	बहिरूपवन
१३७	२१	दृष्टि	वृष्टि
१६९	२३	मोहमद	मोहमन्त्र
१७८	२२	शिथिलवृत्त	शिथिलवृन्त

[इनके सिवा छपते समय मशीनकी रगड़से शब्दोंके ऊपरकी रेफ, ई, ए, ऐ, ओ, औ आदिकी मात्राएँ टूट गई हैं और उनसे बहुत-सी अशुद्धियाँ हो गई हैं। पाठक उन्हें ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करें।